अथ पञ्चमं काण्डम्

१. [प्रथमं सूक्तम्]

गतसूक्त की भावना को जीवन में अनूदित करनेवाला यह साधक सब ओर से शत्रुओं से अपना रक्षण करता है। शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित यह साधक '**बृहद्दिवः**'=बड़ा ज्ञानी-प्रकाशमय जीवनवाला बनता है। यह '**अथर्वा**'=स्थिरवृत्ति का (अ+थर्व) अथवा अन्तःनिरीक्षण की वृत्तिवाला (अथ अर्वाङ्) बनता है। इसी 'बृहद्दिव अथर्वा' का यह सूक्त है—

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**पराबृहतीत्रिष्टुप्**॥

ऋधङ्मन्त्रः, भ्राजमानः

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि॥ १॥

१. वे प्रभु **ऋधङ्मन्त्रः**=प्रवृद्ध ज्ञानवाले—सर्वज्ञ हैं, **योनिम्**=संसार के मूलकारण प्रकृति को **यः आबभूव**=जिसने व्याप्त किया हुआ है, **अमृतासुः**=ये प्रभु अमर प्राणोंवाले व **वर्धमानः**=सदा से बढ़े हुए हैं, **सुजन्मा**=ये प्रभु उत्तम शक्तियों के विकासवाले हैं—प्रभु अपने उपासकों को शक्तियों के विकासवाला बनाते हैं। २. **अदब्धासुः**=अहिंसित प्राणवाले (नि० ३.९) ये प्रभु **अहा इव भ्राजमानः**=दिनों को प्रकट करनेवाले सूर्य के समान देदीप्यमान हैं। ये **त्रितः**=(तीर्णतमो मेधया बभूव—निरु० ९.६, त्रितः त्रिस्थान इन्द्रः, नि० ८.२५) निरतिशय बुद्धिवाले व तीनों लोकों में व्याप्त प्रभु **धर्ता**=धारण करनेवाले हैं और **त्रीणि दाधार**=तीनों लोकों का धारण कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रवृद्ध ज्ञानवाले प्रभु का उपासन करता हुआ उपासक भी प्रभु की भाँति ज्ञान, प्राणशक्ति व अन्य शक्तियों के विकासवाला बनने का यत्न करता है। यह 'शरीर, मन व बुद्धि' इन तीनों का धारण करनेवाला होता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अनुदित वाणी का प्रकाश

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत॥ २॥

१. **यः**=जो प्रभु **प्रथमः**=अत्यन्त विस्तारवाले—सर्वव्यापक हैं, **धर्माणि आससाद**=सब धारणात्मक कर्मों को प्राप्त होते हैं, **ततः**=उन धारणात्मक कर्मों के द्वारा ही **पुरूणि वपूंषि**=नाना प्रकार के शरीरों को **कृणुषे**=करते हैं। २. ये **धास्युः**=सबका धारण करनेवाले **प्रथमः**=सर्वव्यापक प्रभु **योनिम् आविवेश**=संसार की योनिभूत प्रकृति में प्रविष्ट हो रहे हैं। इसमें प्रविष्ट होकर ही ये इस अनन्त रूपोंवाले ब्रह्माण्ड का निर्माण व धारण करते हैं। ये प्रभु वे हैं **यः**=जो संसार का निर्माण करके, सृष्टि के आरम्भ में अपने अमृत पुत्रों को जन्म देकर उनके हृदयों में स्थित हुए-हुए **अनुदिताम्**=मुख से उच्चारण न की गई **वाचम्**=इस वेदवाणी का **चिकेत**=ज्ञान कराते हैं। 'अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' नामक (पूर्वे चत्वारः) सर्वाधिक तीव्र बुद्धिवाले ऋषियों के हृदयों में प्रभु इस वेदज्ञान को बिना शब्दोच्चारण के ही प्राप्त करानेवाले होते हैं।

भावार्थ—सर्वव्यापक प्रभु धारणात्मक कर्मों को करते हैं, विविध रूपोंवाले इस ब्रह्माण्ड

का निर्माण व धारण करनेवाले वे प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में 'अग्नि' आदि ऋषियों के हृदयों में वेदज्ञान का प्रकाश करते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अमृतत्व व नैर्मल्य

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम्॥ ३॥

१. हे प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपकी **शोकाय**=दीप्ति को प्राप्त करने के लिए **तन्वं रिरेच**=अपने शरीर को शुद्ध कर डालता है—इसमें से सब मलों का रेचन कर डालता है, वह **हिरण्यं क्षरत्**=अपने अन्दर ज्योति व वीर्य को (हिरण्यं वै ज्योतिः, हिरण्यं वै वीर्यम्) संचरित करता है। इसके जीवन में **स्वाः शुचयः**=आत्मदीप्तियाँ **अनु**=अनुकूलता से गतिवाली होती हैं। २. **अत्र**=यहाँ—इस योगी (साधक) के जीवन में प्राण और अपान **अमृतानि**=नीरोगता का **दधेते नाम**=निश्चय से धारण करते हैं। **विशः**=शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में प्रवेश करनेवाले ये प्राण **अस्मे**=हमारे लिए **वस्त्राणि**=इन 'अन्नमय, प्राणमय' आदि कोशरूप वस्त्रों को **एरयन्ताम्**=गति के द्वारा सर्वथा कम्पित करके दूरीकृत मलोंवाला करें—हमारे कोशरूप सब वस्त्र निर्मल हों।

भावार्थ—हम हृदय में प्रभु की दीप्ति के लिए शरीरों को निर्मल करें—अपने अन्दर दीप्ति को सञ्चरित करें। आत्मदीप्ति को देखने के लिए यत्नशील हों। प्राणापान हमें निर्मल व नीरोग बनाएँ।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रतरं, पूर्व्यं, अजुर्यम्

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम्।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम्॥ ४॥

१. **यत्**=जब **एते**=ये साधक लोग **प्रतरम्**=संसार-सागर से तरानेवाले **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम उस प्रभु को **प्रगुः**=प्रकर्षेण जानेवाले होते हैं तब ये **सदःसदः**=प्रत्येक शरीररूप घर में उस **अजुर्यम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले परमेश्वर में **आतिष्ठन्तः**=स्थिर होनेवाले होते हैं। ये प्रत्येक प्राणी में उस प्रभु को देखते हैं। वे प्रभु को इस रूप में देखते हैं कि ये प्रभु **कविः**=सर्वज्ञ हैं। २. इसप्रकार सब प्राणियों में प्रभु को देखनेवाले पति-पत्नी **शुषस्य मातरा**=शत्रु-शोषक बल का निर्माण करनेवाले व **रिहाणे**=परस्पर प्रीतिवाले (रिह आस्वादने) होते हैं। ये **जाम्यै**=संसार को जन्म देनेवाली इस प्रकृति के **धुर्यं पतिम्**=सम्पूर्ण संसार के धारण में समर्थ उस पति प्रभु को **एरयेथाम्**=अपने हृदयों में प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—उस तारक, पालक प्रभु का उपासन करनेवाले लोग प्रत्येक प्राणी में उस अविनाशी प्रभु को देखते हैं। उसे सर्वज्ञ जानते हुए पति-पत्नी अपने में शत्रु-शोषक बल का निर्माण करते हैं और परस्पर प्रीतिवाले होते हैं। ये इस प्रकृति के धुर्य पति उस प्रभु को ही अपने हृदयों में प्रेरित करते हैं—उसी का ध्यान करते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सूर्य व पृथिवी' में प्रभु की महिमा का दर्शन

तदू षु ते महत्पृथुज्मन्नमः कविः काव्येना कृणोमि।
यत्सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते॥ ५॥

१. हे **पृथुज्मन्**=विस्तृत गतिवाले प्रभो! मैं **कविः**=ज्ञानी बनकर **काव्येन**=वेदरूप काव्य के द्वारा **ते**=आपके लिए **उ**=निश्चय से **तत्**=उस **सुमहत्**=बहुत अधिक **नमः कृणोमि**=नमस्कार करता हूँ, **यत्**=जो **अत्र**=इस संसार में **अभिक्षाम्**=(क्षि निवासगत्योः) हमारे उत्तम निवास के लिए **मही**=महत्त्वपूर्ण **रोधचक्रे**=परस्पर विरुद्ध चक्रोंवाले ये सूर्य और पृथिवी ('सूर्य' पृथिवी का आकर्षण करता है, 'पृथिवी' सूर्य का) **सम्यञ्चौ**=सम्यक् गतिवाले **अभियन्तौ**=चारों ओर गति करते हुए **वावृधेते**=निरन्तर हमारा वर्धन करते हैं। २. सूर्य और पृथिवी के ठीक कार्य से ही अन्तरिक्ष से वृष्टि होकर हमारा पालन-पोषण होता है। एवं, ये हमारे वर्धन का कारण बनते हैं। इनके कार्यों को देखकर प्रभु की महिमा का स्मरण होता है। हम प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हैं। इन सबके अन्दर गति देनेवाले वे प्रभु ही तो हैं।

भावार्थ—एक ज्ञानी पुरुष सूर्य व पृथिवी की गतियों को—उनके द्वारा होते हुए सब प्राणियों के वर्धन को देखकर प्रभु के प्रति नतमस्तक होता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सप्त मर्यादाः

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥ ६॥

१. **कवयः**=क्रान्तदर्शी विद्वानों ने **सप्त**=सात **मर्यादाः**=मर्यादाएँ—पाप से बचने की व्यवस्थाएँ **ततक्षुः**=बनाई हैं, **तासाम्**=उनमें से जो **एकाम् इत्**=एक का भी **अभिगात्**=उल्लंघन करता है, वह **अंहुरः**=पापी होता है। २. **आयोः ह स्कम्भः**=(आयु=wind) वायु, अर्थात् प्राणों (वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्) को वश में करनेवाला—प्राणायाम का अभ्यासी पुरुष **उपमस्य**=अन्तिकतम—हृदय में ही स्थित उस प्रभु के **नीडे**=आश्रय में **पथां विसर्गे**=विविध मार्गों के (विसर्गः= abandonment) हो जाने पर **धरुणेषु**=धारणात्मक कर्मों में ही **तस्थौ**=स्थित होता है—अन्य बातों को छोड़कर धारणात्मक कर्मों में ही प्रवृत्त होता है। यास्क के शब्दों में सात छोड़ने योग्य बातें ये हैं—**स्तेयम्**=चोरी, **तल्पारोहण**=गुरु-शय्या पर आरोहण—बड़ों का निरादर, **ब्रह्महत्या**=ज्ञान का त्याग, **भ्रूणहत्या**=गर्भघात, सुरापान, दुष्कृत कर्म का फिर-फिर करना, पाप करके झूठ बोलना, अर्थात् उसे छिपाने का प्रयत्न करना'। इन सबको छोड़कर धारणात्मक कर्मों में ही स्थित होना चाहिए।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषों ने सात मर्यादाएँ बना दी हैं। उन्हें तोड़ना पाप है। प्राणसाधना द्वारा मन को वशीभूत करनेवाला व्यक्ति प्रभु का स्मरण करता है और पापवृत्तियों को छोड़कर धारणात्मक कर्मों में ही प्रवृत्त रहता है।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अमृतासु-असुरात्मा

उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्व१स्तत्सुमद्गुः।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत्सचते हविर्दाः॥ ७॥

१. **उत**=और **अमृतासुः**=अविनाशी प्रभु को अपना प्राण समझनेवाला **व्रतः**=व्रतमय जीवनवाला मैं **कृण्वत्**=कर्म करता हुआ ही **एमि**=जीवन-यात्रा में चलता हूँ। **असुरात्मा**=(असु+र) प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाले प्रभु को अपना आत्मा समझनेवाला यह साधक **तत्**=तब **तन्वः**=इस शरीर को **सुमद्गुः**=(सुमत्=प्रशस्त) प्रशस्त इन्द्रियोंवाला बनाता है। प्रभु-स्मरण से

इन्द्रियाँ विषय-वासनाओं से मलिन नहीं होती। २. **उत वा**=और निश्चय से **शुक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **यत्**=अब—इस साधक के जीवन में **रत्नम्**=रमणीय तत्त्वों को दधाति धारण करते हैं तो **हविर्दा**=यह हवि देनेवाला—यज्ञशील व्यक्ति **वा**=निश्चय से **ऊर्जया सचते**=बल और प्राणशक्ति से युक्त होता है।

भावार्थ—हम प्रभु को ही अपना प्राण समझें, प्रभु को ही अपनी आत्मा जानें। इससे हम प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बनेंगे। प्रभु हममें रमणीय रत्नों को धारण करेंगे। हम यज्ञशील बनकर बल व प्राणशक्ति से सम्पन्न होंगे।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पुत्र की पिता से बल की याचना

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये।
दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि॥ ८॥

१. **उत**=और **पुत्रः**=प्रभु का योग्य पुत्र बनता हुआ मैं **पितरम्**=अपने पिता प्रभु से **क्षत्रम् ईडे**=बल की याचना करता हूँ। ज्ञानी लोग उस **ज्येष्ठम्**=सर्वश्रेष्ठ **मर्यादम्**=सब मर्यादाओं का स्थापन करनेवाले प्रभु को **स्वस्तये**=कल्याण के लिए **अह्वयन्**=पुकारते हैं। २. हे **वरुण**=वरणीय प्रभो! **याः**=जो **ते**=आपकी **विष्ठाः**=व्यवस्थाएँ हैं, **नु**=निश्चय से **ताः**=उन्हें ये ज्ञानी पुरुष **दर्शन्**=देखते हैं। 'ब्रह्माण्ड में प्रत्येक पिण्ड को वे प्रभु किस प्रकार मर्यादा में चला रहे हैं'—इस बात को देखकर आश्चर्य ही होता है। इसीप्रकार हे प्रभो! आप ही **आवर्व्रततः**=(आवृत् यङ्लुगन्तशतृ) कर्मफल के अनुसार विभिन्न योनियों में विचरनेवाले जीव के **वपूंषि**=शरीरों को **कृणवः**=करते हैं। जीवों को कर्मानुसार विविध शरीर आप ही प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से बल की याचना करें। ब्रह्माण्ड में उस प्रभु की व्यवस्था को देखें और प्रभु को ही कर्मानुसार विविध शरीरों को प्राप्त करानेवाला जानें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽत्यष्टिः**॥

अविम् वरुणम्

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमादित्या इषिरम्।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा॥ ९॥

१. हे **अमुर**=अमूढ़—सर्वज्ञ अथवा अमर प्रभो! आप **अर्धम्**=(Habitation) प्राणियों के निवासभूत इस लोक को **अर्धेन**=वृद्धि (Increase) के द्वारा तथा **पयसा**=आप्यायन के साधनभूत भोजनों के द्वारा **पृणक्षि**=पूर्ण करते हो। **अर्धेन**=इस वृद्धि के द्वारा **शुष्म वर्धसे**=हम सबके बल को बढ़ाते हो। प्रभु दूध आदि उत्तम भोजनों को प्राप्त कराके हमारे बलों का वर्धन करते हैं। २. हम स्तुतियों के द्वारा उस **अविम्**=रक्षक प्रभु का **वृधाम**=अपने में वर्धन करनेवाले बनें। वे प्रभु **शग्मियम्**=सर्वशक्तिमान् व आनन्दमय हैं, **वरुणम्**=हमारे सब कष्टों व पापों का निवारण करनेवाले हैं, **सखायम्**=हमारे सच्चे सखा हैं, **पुत्रम्**=(पुनाति त्रायते) हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले तथा हमारा त्राण—रक्षण करनेवाले हैं, **अदित्याः इषिरम्**=इस प्रकृति के प्रेरक—गति देनेवाले (Prime Mover) हैं। प्रभु से प्रेरित प्रकृति ही इस विकृति के रूप में—संसार के रूप में आती है। ३. **सत्यवाचा**=सत्य वेदवाणी द्वारा **कविशस्तानि**=ज्ञानियों से उपदिष्ट **रोदसी**=द्यावापृथिवी में होनेवाले **वपूंषि**=(wonder, wonderful phenomenon) आश्चर्यों को **अस्मै**=इस

प्रभु के स्तवन के लिए **अवोचाम**=कहें। इस ब्रह्माण्ड में होनेवाले आश्चर्यों में प्रभु की महिमा को देखें। प्रभु की महिमा को देखते हुए प्रभु का गुणगान करें, प्रभु-जैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—प्रभु संसार को वृद्धि के साधनभूत तत्त्वों से परिपूर्ण करते हैं। हमारे बलों को बढ़ाते हैं। वे ही रक्षक, सुख के दाता और पाप-निवारक सखा हैं। वे ही प्रकृति में गति पैदा करके इस अद्भुत ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। हम उन प्रभु का ही गुणगान करें।

अगला सूक्त भी 'बृहद्दिव अथर्वा' का ही है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उग्रः त्वेषनृम्नः

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यदे॑नं॒ मद॑न्ति॒ विश्व॒ ऊमाः॑॥ १॥

१. **तत् इत्**=वे प्रभु ही **भुवनेषु**=सब लोक-लोकान्तरों व प्राणियों में **ज्येष्ठम्**=सबसे उत्तम **आस**=हैं, **यतः**=जिस ब्रह्म से **उग्रः**=तेजस्वी व **त्वेषनृम्णः**=दीप्त बलवाला **जज्ञे**=प्रादुर्भूत होता है, प्रभु की उपासना से उपासक 'उग्र व त्वेषनृम्ण' होता है। उपासना से उपासक के हृदय में ज्ञानसूर्य का उदय होता है। यह ज्ञानसूर्य उसे 'उग्र व त्वेषनृम्ण' बना देता है। २. **सद्यः**=शीघ्र ही **जातः**=प्रादुर्भूत हुआ-हुआ यह ज्ञानसूर्य **शत्रून् निरिणाति**=वासनारूप शत्रुओं को नष्ट कर देता है। यह समय वह होता है **यत्**=जबकि **विश्वे**=सब **ऊमाः**=शत्रुओं से अपना रक्षण करनेवाले तथा रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग **एनम् अनुमदन्ति**=इस परमात्मा की उपासना के अनुपात में आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना से उपासक के हृदय में ज्ञान का प्रकाश होकर सब वासना-अन्धकार का विलय हो जाता है। इस ज्ञानसूर्य के उदय होते ही सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं और रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त उपासक प्रभु की उपासना के अनुपात में आनन्दित होते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शक्तिपुञ्ज प्रभु

वा॒वृ॒धा॒नः शव॑सा॒ भूर्यो॑जाः॒ शत्रु॑र्दा॒साय॑ भि॒यसं॑ दधाति।
अव्य॑नच्च॒ व्य॒नच्च॒ सस्नि॒ सं ते॑ नवन्त॒ प्रभृ॑ता॒ मदे॑षु॥ २॥

१. वे प्रभु **शवसा वावृधानः**=बल से खूब बढ़े हुए हैं, **भूरिओजः**=बहुत अधिक ओजवाले हैं, **शत्रुः**=हमारी वासनाओं का शातन करनेवाले हैं, **दासाय**=(दसु उपक्षये) हमारी शक्तियों को क्षीण करनेवाले काम-क्रोध के लिए **भियसं दधाति**=भय को धारण करते हैं। जहाँ महादेव हैं, वहाँ कामदेव आने से डरता है। २. वे प्रभु **अव्यनत् च**=प्राण न लेनेवाले स्थावर पदार्थों को **च**=तथा **व्यनत्**=विशेषरूप से प्राणधारण करनेवाले जंगम प्राणियों को **सस्नि**=शुद्ध करनेवाले हैं। सब प्रकार के मलों को दूर करके वे प्रभु सर्वत्र पवित्रता का सञ्चार करनेवाले हैं। हे प्रभो! **ते**=आपके **मदेषु**=आनन्दों में **प्रभृता**=धारण किये हुए सब प्राणी **संनवन्त**=सम्यक् स्तवन करते हैं (नु स्तुतौ) अथवा उत्तम गतिवाले होते हैं। (नवति गतिकर्मा)।

भावार्थ—प्रभु अनन्त शक्तिवाले हैं, हमारे शत्रुओं को भयभीत करके उन्हें हमसे दूर करते हैं। सबका शोधन करते हैं। प्रभु-प्राप्ति का आनन्द अनुभव होने पर उपासक प्रभु का निरन्तर

स्तवन करते हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अपने संकल्पों को प्रभु में सम्पृक्त करना

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः॥ ३॥

१. हे प्रभो! ये उपासक **त्वे**=आपमें ही **क्रतुम्**=अपने संकल्प व प्रज्ञान को **भूरि**=खूब ही **अपि पृञ्चन्ति**=संपृक्त करते हैं। **एते**=ये आपके साथ अपने को सम्पृक्त करके **ऊमाः**=अपना रक्षण करनेवाले लोग **यत्**=जब **द्विः भवन्ति**=दो बार—प्रातः और सायं आपके ध्यान में होते हैं अथवा **त्रिः (भवन्ति)**=तीन बार-प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन व सायन्तन सवन में आपकी उपासना में स्थित होते हैं तब **स्वादोः स्वादीयः**=स्वादु से भी स्वादु, अर्थात् मधुरतम आप इस उपासक के जीवन को **स्वादुना सृज**=माधुर्य से संसृष्ट करते हैं। २. इस उपासक के **अदः मधु**=उस मधुर जीवन को **अभियोधीः**=वासनाओं के साथ युद्ध के द्वारा **सुमधुना**=और अधिक माधुर्य से **सम्**=संगत करते हैं।

भावार्थ—हम अपने संकल्पों व प्रज्ञानों को प्रभु-उपासना में सम्पृक्त करें। प्रतिदिन दो या तीन-बार प्रभु-चरणों में बैठने का नियम बनाएँ। प्रभु वासना-विनाश के द्वारा हमारे जीवनों को मधुर बनाएँगे।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

लक्ष्मी के साथ विष्णु

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।

ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः॥ ४॥

१. **यदि**=यदि **नु**=अब **चित्**=निश्चय से **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **रणेरणे**=प्रत्येक संग्राम में **धना जयन्तं त्वा**=धनों का विजय करनेवाले आपको **अनुमदन्ति**=अनुकूलता से स्तुत करते हैं तो हे **शुष्मिन्**=शत्रु-शोषक बलवाले प्रभो! आप **ओजीयः**=ओजस्वितावाले **स्थिरम्**=स्थिर धन को **आतनुष्व**=हमारे लिए विस्तृत करो। हमें धन प्राप्त हो। हमारा धन हमारी ओजस्विता को बढ़ानेवाला हो और चित्तवृत्ति को स्थिर करनेवाला हो। २. इसके कारण हमारे जीवनों में **दुरेवासः**=दुर्गमनवाले—अशुभ आचरणवाले **कशोकाः**=(क-शोकाः) पर-सुख में शोक करनेवाले ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि के भाव **त्वा मा दभन्**=आपको हिंसित न कर दें, अर्थात् धनों में आसक्त होकर हम आपको न भूल जाएँ।

भावार्थ—हम धनों के विजेता प्रभु का स्मरण करें। प्रभु-स्मरण के साथ प्राप्त धन हमारे अन्दर स्थिर ओज को प्राप्त करानेवाले हों। धनों में आसक्त होकर हम ईर्ष्या-द्वेष आदि में फँसकर प्रभु को न भूल जाएँ।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उपासना व शत्रुविजय

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।

चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि॥ ५॥

१. हे प्रभो! **रणेषु**=संग्रामों में **वयम्**=हम **त्वया**=आपके साथ **प्रपश्यन्तः**=अच्छी प्रकार से देखते हुए—ज्ञान प्राप्त करते हुए **युधेन्यानि**=युद्ध करने योग्य काम-क्रोधादि असुरों को **भूरि**=खूब

ही **शाशद्महे**=नष्ट करें। हम अपने अन्दर छिपकर रहनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अवश्य विनष्ट करनेवाले हों। मैं **ते**=आप द्वारा दिये हुए **आयुधा**=इन्द्रिय, मन व बुद्धिरूप अस्त्रों को **वचोभिः**=वेद में दिये गये आपके निर्देशों के अनुसार **चोदयामि**=प्रेरित करता हूँ। **ते ब्रह्मणा**=आपके इस वेदज्ञान व स्तवन से मैं **वयांसि**=अपने जीवन को **संशिशामि**=तीव्र करता हूँ। मेरा जीवन तीव्र बुद्धिवाला बनता है और मैं इन वासनारूप शत्रुओं का विनाश करनेवाला बनता हूँ।

भावार्थ—प्रभु से मिलकर हम युद्ध में वासनारूप शत्रुओं को पराजित करें। अपने इन्द्रिय, मन व बुद्धिरूप अस्त्रों को तीव्र करें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गृह में मातृ-प्रतिष्ठा

नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि॥ ६॥

१. हे प्रभो! **यस्मिन् दुरोणे**=जिस यज्ञशील पुरुष के गृह में **अवसा**=(food, wealth) उत्तम भोजनों व धनों के द्वारा **आविथ**=आप रक्षण करते हो **तत्**=उस गृह को **अवरे परे च**=इस निचली श्रेणी के पार्थिव धन में तथा उत्कृष्ट दिव्य धन में **निदधिषे**=निश्चय से स्थापित करते हो। आप संसार-यात्रा के लिए पार्थिव धनों को प्राप्त कराते हो तो अध्यात्म उत्कर्ष के लिए दिव्य धनों को देते हो। २. हे उपासको! तुम अपने गृह में **जिगत्नुम्**=जीवन को गतिमय व विजयशील बनानेवाली **मातरम्**=वेदमाता को **आस्थापयत**=प्रतिष्ठित करो। श्रद्धायुक्त मन से इसका स्वाध्याय करो। **अतः**=इससे—इस वेदवाणी की प्रेरणा से **भूरि**=खूब ही धारण व पोषणात्मक **कर्वराणि**=कर्मों को **इन्वत**=व्याप्त करो, सदा ही उत्कृष्ट कर्मों में लगे रहो।

भावार्थ—प्रभु हमें पर व अपर दोनों धनों को प्राप्त कराते हैं। संसार-यात्रा के लिए धन तथा अध्यात्म जीवन के लिए ज्ञान। हम घरों में वेदमाता को प्रतिष्ठित करें और उससे प्रेरणा लेकर सदा उत्कृष्ट कर्मों को करनेवाले बनें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रतिमानं पृथिव्याः

स्तुष्व वर्ष्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः॥ ७॥

१. हे जीव! तू **वर्ष्मन्**=(शरीरं वर्ष्मविग्रहः) इस मानव-शरीर में उस प्रभु का **स्तुष्व**=स्तवन कर जो प्रभु **पुरुवर्त्मानम्**=पालक व पूरक मार्गवाले हैं। प्रभु-प्राप्ति का मार्ग हमें नीरोगता व निर्मलता की ओर ले-चलता है। वे प्रभु **समृभ्वाणम्**=ज्ञान से सम्यग् दीप्त हैं, **इनतमम्**=सर्वमहान् स्वामी हैं, **आप्त्यानाम् आप्तम्**=विश्वसनीयों में विश्वसनीय हैं। प्रभु-भक्त को किसी प्रकार का संशय नहीं रहता। प्रभु उपासकों का रक्षण करते ही हैं। वे **भूर्योजाः**=अनन्त बलवाले प्रभु **शवसा**=बल के द्वारा **आदर्शति**=समन्तात् दृष्टिगोचर होते हैं—सर्वत्र प्रभु की शक्ति कार्य करती हुई प्रतीत होती है। वे प्रभु **पृथिव्याः**=पृथिवी के **प्रतिमानम्**=प्रतिमान को—समानता को **प्रसक्षति**=धारण करते हैं, अर्थात् इस पृथिवी की भाँति सबके आधार होते हुए सबका पालन व पोषण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का मार्ग पालन व पूरण करनेवाला है। प्रभु ज्ञानदीप्त हैं, सर्वेश्वर हैं, विश्वसनीयतम आधार हैं। सर्वत्र प्रभु की शक्ति कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। प्रभु पृथिवी की भाँति सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रकाश, बल व तेजस्वी इन्द्रियसमूह

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान्॥ ८॥

१. **बृहद् दिवः**=प्रभु से ज्ञान प्राप्त करके उत्कृष्ट ज्ञान-धनवाला यह उपासक **इन्द्राय**=प्रभु की प्राप्ति के लिए **इमा ब्रह्म कृणवत्**=इन स्तोत्रों को करता है। इस स्तवन से **अग्रियः**=जीवन-मार्ग में आगे बढ़नेवाला यह 'बृहद् दिव' **स्वर्षाः**=प्रकाश को प्राप्त करनेवाला होता है, **शूषम् क्षयति**=शत्रु-शोषक बल को प्राप्त करता है और **महः गोत्रस्य**=तेजस्वी इन्द्रियसमूह का ईश्वर होता है (क्षि=to govern, rule, to be master of)। २. यह **स्वराजा**=आत्मज्ञान से दीप्त होनेवाला **तुरः**=शत्रुओं का संहार करनेवाला उपासक **तपस्वान्**=तपस्वी होता हुआ **चित्**=निश्चय से **विश्वम्**=सम्पूर्ण **अर्णवत्**=(ऋण=जल) ज्ञान-जल से पूर्ण ज्ञान-समुद्र वेद को (क्षयति) प्राप्त होता है (रायः समुद्रांश्चतुरः)।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्त करके हम प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें। यह स्तवन हमें प्रकाश, बल व तेजस्वी 'इन्द्रियसमूह' को प्राप्त कराएगा।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**भुरिक्परातिजागतात्रिष्टुप्**॥

स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च॥ ९॥

१. **एव**=इसप्रकार **महान्**=पूजा की वृत्तिवाला, **बृहद् दिवः**=उत्कृष्ट ज्ञानवाला **अथर्वा**=न डाँवाडोल वृत्तिवाला पुरुष **स्वां तन्वम्**=अपने शरीर को **इन्द्रम् एव अवोचत्**=परमेश्वर ही कहता है—अन्तःस्थित प्रभु के कारण अपने को प्रभु ही समझता है। शीशी में शहद हो तो शीशी की ओर संकेत करके यही तो कहा जाता है कि 'यह शहद है'। इसीप्रकार अन्तःस्थित प्रभु को देखता हुआ यह अपने शरीर की ओर निर्देश करता हुआ यही कहता है कि 'यह प्रभु ही है'। २. इस अथर्वा की 'ब्रह्म व क्षत्र' दोनों शक्तियों इसे **स्वसारौ**=आत्मतत्त्व की ओर ले-जानेवाली होती हैं, **मातरिभ्वरी**=(मातरि-भूवन्) ये इसे वेदमाता की गोद में स्थापित करती हैं और **अरिप्रे**=निर्दोष जीवनवाला बनाती हैं। इसी हेतु ये 'बृहद्दिव अथर्वा' लोग **एने हिन्वन्ति**=इन दोनों को अपने में प्रेरित करते हैं **च**=तथा **शवसा**=गति के द्वारा (शवतिर्गतिकर्मा) इन्हें **वर्धयन्ति**=बढ़ाते हैं।

भावार्थ—एक ज्ञानी पुरुष अन्तःस्थित प्रभु को देखता हुआ अपने को प्रभु से भिन्न अनुभव नहीं करता। यह ज्ञान व बल के द्वारा आत्मतत्त्व की ओर चलता है, वेदमाता की गोद में आसीन होता है और इसप्रकार निर्दोष जीवनवाला बनता है। ज्ञानी पुरुष इन 'ब्रह्म व क्षत्र' को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। अगला सूक्त भी 'बृहद्दिव अथर्वा' का ही है—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

चतुर्दिग् विजय

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम॥ १॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **विहवेषु**=जीवन-संग्रामों में **मम वर्चः अस्तु**=मुझमें वर्चस् हो। इस वर्चस् के द्वारा मैं शत्रुओं को जीतनेवाला बनूँ। **वयम्**=हम **त्वा इन्धानाः**=आपको अपने हृदयों से दीप्त करते हुए **तन्वं पुषेम**=अपने शरीर का उचित पोषण करें। २. मेरी शक्ति इतनी बढ़े कि **चतस्रःप्रदिशः**=चारों प्रकृष्ट दिशाएँ **मह्यम्**=मेरे लिए **नमन्ताम्**=नत हो जाएँ। मैं चारों दिशाओं का विजय करनेवाला बनूँ। हे प्रभो! **त्वया अध्यक्षेण**=आप अध्यक्ष हों और हम आपकी अध्यक्षता से शक्ति-सम्पन्न होकर **पृतनाः**=सब संग्रामों को **जयेम**=जीतनेवाले हों। प्राची दिक् का अधिपति 'इन्द्र' बनकर मैं काम को पराजित करूँ। दक्षिणा दिक् का अधिपति 'यम' बनकर मैं क्रोध को जीतूँ। प्रतीची दिक् का अधिपति 'वरुण' बनकर मैं लोभ का निवारण करूँ और उदीची दिक् का अधिपति 'सोम' बनकर सब दुर्गुणों से ऊपर उठ जाऊँ।

भावार्थ—हम प्रभु-उपासना करते हुए प्रभु की अध्यक्षता में सब संग्रामों का विजय करें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

अरि-प्रतिनोदन

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत्॥ २॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **परेषाम्**=शत्रुओं के **मन्युम्**=क्रोध को **प्रतिनुदन्**=परे धकेलते हुए **त्वम्**=आप **नः गोपाः**=हमारे रक्षक होते हुए **विश्वतः परिपाहि**=हमें सर्वतः सुरक्षित कीजिए। हम गौएँ हों, आप हमारे गोप हों। हम क्रोधरूप शेर का शिकार न हो जाएँ। २. ये **दुरस्यवः**=हमें बुरी स्थिति में फेंकनेवाले **अपाञ्चः**=धर्म-मार्ग से हटकर चलनेवाले लोग **निवता यन्तु**=निम्नमार्ग से जानेवाले हों, अर्थात् सदा पराजित ही हों। **एषाम्**=इन शत्रुओं के **प्रबुधाम्**=चेतानेवालों का **चित्तम्**=चित्त **अमा विनेशत्**=इन्हें घर की ओर ले-जानेवाला हो। हमारे शत्रुओं में जो समझदार हैं वे भी इसप्रकार घबरा जाएँ कि वे हमारे सब शत्रुओं को घर लौट जाने का ही परामर्श दें। उनका मस्तिष्क भी हमपर आक्रमण करने के लिए कोई मार्ग न निकाल सके।

भावार्थ—प्रभु हमारे रक्षक हों, हमारे शत्रुओं को परे धकेलनेवाले हों। प्रभु के अनुग्रह से हमारा अशुभ चाहनेवाले सब शत्रु पराजित हों। इन्हें घर लौट जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न सूझे।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उरुलोक अन्तरिक्ष

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै॥ ३॥

१. **मम विहवे**=मेरी पुकार होने पर **सर्वे देवाः सन्तु**=सब देव मेरे हों। आराधना करता हुआ मैं सब देवों को अपने में प्रतिष्ठित कर पाऊँ। कौन देव? **इन्द्रवन्तः**=इन्द्रवाले—इन्द्र जिनका अध्यक्ष है, जिनमें इन्द्र की ही शक्ति काम कर रही है, ये सब देव मुझे प्राप्त हो, **मरुतः**=प्राण मुझे प्राप्त हों, **विष्णुः**=(विश् व्याप्तौ) व्यापकता, उदारता, विशालता की देवता मुझे प्राप्त हों, **अग्निः**=मुझमें आगे बढ़ने की भावना हो (अग्रणीत्व हो)। मैं प्राणशक्ति-सम्पन्न, उदार व अग्रगतिवाला बनूँ। २. **मम**=मेरा **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष **उरुलोकम् अस्तु**=विस्तृत प्रकाशवाला व बहुत स्थानवाला हो। मेरा हृदय अन्धकार से रहित हो और उसमें सभी के लिए स्थान हो। **अस्मै कामाय**=इस हृदयान्तरिक्ष के उरुलोकत्व की कामना की पूर्ति के लिए **वातः मह्यं**

पवताम्=वायु मेरे लिए अनुकूल होकर बहे—सारा वातावरण ऐसा हो कि मैं अपने हृदय को विशाल बना सकूँ।

भावार्थ—मेरा जीवन प्रभु-स्मरण के साथ प्राणशक्तिसम्पन्न, विशाल हृदयवाला व प्रगतिशील हो। मैं अनुदार व अन्धकारमय जीवनवाला न हो जाऊँ। बस, यही मेरी आराधना हो। प्रभु सारे वातावरण को मेरी इस कामना के अनुकूल बनाएँ।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुभ संकल्प

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु मेह॥ ४॥

१. **मम**=मेरे **यानि**=जो **इष्टा**=अभिलषित पदार्थ व यज्ञादि उत्तम कर्म हैं, वे **मह्यम् यजन्ताम्**=मेरे लिए संगत हों—मुझे इष्ट पदार्थों व उत्तम कर्मों की प्राप्ति हो। **मे**=मेरे **मनसः**=मन का **आकूतिः**=संकल्प **सत्या अस्तु**=सत्य हो। मैं कभी असत्य संकल्पोंवाला न बनूँ। २. **अहम्**=मैं **कतमत् चन**=किसी भी **एनः**=पाप को **मा निगाम**=प्राप्त न होऊँ। **विश्वेदेवाः**=सब दिव्यगुण **इह**=यहाँ, इस जीवन में **मा अभिरक्षन्तु**=मेरा रक्षण करें।

भावार्थ—हमें सब इष्ट वस्तुएँ प्राप्त हों। हमारे संकल्प उत्तम हों। हम पाप से दूर रहें और दिव्य गुण हमारे रक्षक हों।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**द्रविणोदादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'देव-द्रविण' प्राप्ति

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः।
दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा ऽ सुवीराः॥ ५॥

१. **देवाः**=सब देव **मयि**=मुझमें **द्रविणम्**=ज्ञान आदिरूप धनों को **आयजन्ताम्**=संगत करें। **मयि**=मुझमें **आशीः अस्तु**=इन द्रविणों को प्राप्त करने की कामना हो। **मयि देवहूतिः**=मुझमें देवों का पुकारना हो—मैं देवों का आराधन करनेवाला बनूँ। **दैवाः होतारः**=उस महान् प्रभु के सात होता (दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँख व मुख) **नः**=हमारे लिए **एतत्**=इस अभिलषित द्रविण को **सनिषन्**=प्राप्त कराएँ। हम **तन्वा**=शरीर से **अरिष्टाः**=रोगादि से हिंसित न होते हुए **सुवीराः**=उत्तम वीर **स्याम**=हों।

भावार्थ—हम देवों से प्राप्य धनों को प्राप्त करें, देवों का आराधन करें, रोगादि से हिंसित न होते हुए वीर बनें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अभिभा, अशस्ति, वृजिना' से दूर

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वेदेवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या॥ ६॥

१. **दैवीः**=उस महान् देव प्रभु की बनाई हुई अतएव दिव्य गुणोंवाली **षट् उर्वीः**=छह दिशाओ! (प्राची, दक्षिण, प्रतीची, उदीची, ध्रुवा व ऊर्ध्वा) **नः**=हमारे लिए **उरु कृणोत**=विशाल निवास-स्थान प्राप्त कराओ। हम सदा खुले स्थानों में रहनेवाले बनें। **विश्वेदेवासः**=सूर्यादि सब देवो तथा दिव्य वृत्तियो! **आप इह**=इस जीवन में हमें **मादयध्वम्**=आनन्दित करो। हम सूर्यादि

के सम्पर्क में हों तथा सदा उत्तम वृत्तियों को अपनाते हुए प्रसन्न जीवनवाले हों। २. **नः** हमें **अभिभाः**=सम्मुख चमकती हुई आपत्ति **मा विदत्**=न प्राप्त हो। यह हमारे उत्साह को नष्ट न कर दे, हम साहसपूर्वक इसका मुक़ाबला करें। **मा उ अशस्ति**=हमें मत ही अपकीर्त्ति प्राप्त हो। हम कायर बनकर अपयश के पात्र न बनें। **नः**-हमें **या**-जो **द्वेष्या**-न प्रीति करने योग्य **वृजिना** वर्जनीय (कुटिल) पाप-बुद्धि है, वह **मा विदत्**-मत प्राप्त हो। हम कभी कुटिल बुद्धि के शिकार न हो जाएँ।

भावार्थ—हम खुले स्थानों में रहें, शुभ वृत्तियोंवाले बनें। आपत्ति में न घबराएँ, साहसपूर्वक उसका प्रतीकार करते हुए यशस्वी हों। कुटिल पाप-बुद्धि से कभी प्रीति न करें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'तिस्त्रः देवीः' (इडा, सरस्वती, भारती)

तिस्त्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम्।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन्॥ ७॥

१. **तिस्त्रः**-तीनों **देवीः**-दिव्य वृत्तियाँ (**इडा**=उपासना की वृत्ति, **सरस्वती**=ज्ञान की उपासना, **भारती**=शरीर के समुचित भरण-पोषण की वृत्ति) **नः**=हमें **महि शर्म यच्छत**=महनीय सुख प्राप्त कराएँ। हमारे मनों में 'इडा', मस्तिष्क में सरस्वती व शरीर में भारती का प्रतिष्ठापन हो। इसप्रकार हमारा जीवन आनन्दमय हो **च** और **नः**-हमारी **प्रजायै**=सन्तानों के लिए तथा **तन्वः**-शरीरों के लिए **यत्**-जो **पुष्टम्**-उचित पोषण है, उसे प्राप्त कराएँ। २. हम **प्रजया**-सन्तानों से **मा हास्महि** मत छूट जाएँ, अर्थात् सन्तान हमारे जीवनकाल में ही असमय में न चले जाएँ। हम **तनूभिः मा**=शरीरों से भी असमय में पृथक् न हो जाएँ—पूरे शतायु हों। हे **सोम**=सर्वोत्पादक **राजन्**-सर्वशासक प्रभो! हम **द्विषते**-शत्रु के **मा रधाम**=वशीभूत न हो जाएँ—शत्रु हमें हिंसित न कर पाएँ (रध हिंसासंराध्योः)।

भावार्थ—हम 'उपासना, ज्ञान व शक्ति' को प्राप्त होकर सुखी हों। हमारे शरीर व हमारी सन्तानें पुष्ट हों, उनसे हम असमय में वियुक्त न हो जाएँ और शत्रु हमें वशीभूत न कर सकें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पुरुक्षु' शर्म

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षु।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः॥ ८॥

१. **उरुव्यचाः** वह महान् विस्तारवाला—सर्वव्यापक **महिषः**=पूजनीय **पुरुहूतः**=बहुत पुकारा जानेवाला अथवा पालक व पूरक है पुकार जिसकी, ऐसा वह प्रभु **नः**-हमारे लिए **अस्मिन् हवे**-इस पुकार व आराधना के होने पर **पुरुक्षु**=अत्यन्त पालक व पूरक अन्नों से युक्त **शर्म**-गृह **यच्छतु**=दे। उस सर्वव्यापक पूजनीय प्रभु के अनुग्रह से हमारे घर पालक व पूरक अन्नों से युक्त हों। इनमें अन्न की कभी कमी न हो। २. हे **हर्यश्व**=तेजस्वी व लक्ष्यस्थान पर प्राप्त करानेवाले प्रभो! **सः**-वे आप **नः**-हमारे **प्रजायै**=सन्तान के लिए **मृड**-सुख प्राप्त कराइए। हे **इन्द्र**-सर्वेश्वर प्रभो! **नः**-हमें **मा रीरिषः**=मत हिंसित कीजिए, **मा परा दाः**-मत छोड़ दीजिए। हम सदैव आपके अनुग्रह के पात्र हों और आपके अनुग्रह से वासनारूप शत्रुओं से कभी हिंसित न हों।

भावार्थ—वे सर्वव्यापक पूजनीय प्रभु हमें पालक व पूरक अन्नों से भरपूर घर दें। हमारे सन्तान भी प्रभु के अनुग्राह्य हों। हम प्रभु से कभी छोड़ न दिये जाएँ और इसप्रकार हम कभी

वासनाओं के शिकार न बनें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**विश्वदेवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यजमान का रक्षण

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्॥ ९॥

१. **धाता**-वह धारण करनेवाला **विधाता**-सृष्टि का रचयिता **सविता देवः** सबका प्रेरक प्रकाशमय प्रभु **अभिमातिषाहः** हमारे सब अभिमानी शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं। प्रभु वे हैं, **यः**-जो **भुवनस्य पतिः**-सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। सारे ब्रह्माण्ड का धारण व रक्षण करनेवाले वे प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारा भी धारण करते हैं। २. **आदित्याः**-आयुष्य का आदान करनेवाले ये बारह मास **रुद्राः**-शरीरस्थ प्राण (रोगों को दूर भगानेवाले ये प्राण) **उभा अश्विना**-दोनों द्युलोक व पृथिवीलोक (इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ—शत० ४.२.५.१६) तथा **देवाः**-अन्य सब प्राकृतिक शक्तियाँ **यजमानम्**-इस यज्ञशील पुरुष को **निर्ऋथात्** दुर्गति व विनाश से **पान्तु**-बचाएँ।

भावार्थ—उत्तम प्रेरणा प्राप्त करते हुए प्रभु हम यज्ञशील पुरुषों को यज्ञों के कर्तृत्व के अहंकार से ऊपर उठाएँ। प्रभु का बनाया हुआ यह सारा संसार हमें विनाश से बचाए।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**विश्वदेवाः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

आदित्यः, रुद्रः, उपरिस्पृश्

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान्।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत॥ १०॥

१. **ये**-जो **नः**-हमारे **सपत्नाः**-काम-क्रोध, लोभ आदि (स्वत्व पर समान अधिकार जमानेवाले) शत्रु हैं **ते** वे **अप भवन्तु**-हमसे दूर रहें। **इन्द्राग्निभ्याम्**-(**इन्द्र**-बल, **अग्नि**-प्रकाश) बल व प्रकाश के हेतु से **एनान्**-इन शत्रुओं को **अप बाधामहे**-अपने से दूर ही करते हैं। 'काम' को दूर करके ही हम शरीर से सबल हो पाएँगे। क्रोध व लोभ का विनाश ही हमारे ज्ञान के प्रकाश को दीप्त करेगा। **नः**-हममें जो भी **आदित्याः**-सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाशवाले, **रुद्राः**-रोगों को दूर भगानेवाले व **उपरिस्पृशः**-संसार के विषयों के स्पर्श से ऊपर उठनेवाले होते हैं—मात्रा स्पर्शों में आसक्त नहीं होते वे **उग्रम्**-उस तेजस्वी, **चेत्तारम्** सर्वज्ञ व उपासकों को चेतानेवाले प्रभु को **अधि राजम् अक्रत** अधिराज बनाते हैं, प्रभु को ही अपना स्वामी जानते हैं। इसप्रकार ये पवित्र और निर्भीक जीवनवाले बनते हैं। वस्तुतः प्रभु को अधिराज बनाकर ही वे 'आदित्य, रुद्र व उपरिस्पृश्' बन पाते हैं।

भावार्थ—काम-क्रोध लोभ आदि शत्रुओं को दूर भगाकर हम बल व प्रकाश का सम्पादन करें। ज्ञानसूर्य को उदित करके तथा रोगों को दूर भगाकर हम विषयों के स्पर्श से ऊपर उठें और प्रभु को ही अपना अधिराज जानें।

ऋषिः—**बृहद्दिवोऽथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गोजित्, धनजित्, अश्वजित्

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी॥ ११॥

१. सामान्यतः हम प्रभु से दूर और दूर ही रहते हैं। प्रभु से दूर रहना ही हमारी विषयासक्ति

व विनाश का कारण हो जाता है, अतः **अमुतः**=दूर प्रदेश से **इन्द्रम्** उस शत्रु-संहारक प्रभु को **अर्वाञ्चम्**=अपने अन्दर **हवामहे**=पुकारते हैं **यः**=जो प्रभु **गोवित्**=हमारे लिए ज्ञानेन्द्रियों का विजय करनेवाले हैं। इनके विजय के द्वारा वे प्रभु हमारे लिए **धनजित्**-आवश्यक सब धनों तथा ज्ञान का विजय करते हैं, **यः**=जो प्रभु **अश्वजित्**-हमारे लिए कर्मों में व्याप्त होनेवाली—निरन्तर यज्ञों में व्याप्त रहनेवाली कर्मेन्द्रियों का विजय करते हैं। २. वे प्रभु **विहवे**=संग्रामों में **नः**=हमारे **इमं यज्ञम्**=इस पूजन को **शृणोतु**=सुनें। प्रभु को ही तो इन संग्रामों में हमें विजयी बनाना है। हे **हर्यश्व**=दुःखों का हरण करनेवाले, इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **अस्माकम्**-हमारे **मेदी अभूः**-स्नेह करनेवाले हैं। आप ही वस्तुतः हमारा हित करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु हमें उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ—ज्ञानधन व कर्मेन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं। ये प्रभु ही हमें संग्रामों में विजयी बनाते हैं। प्रभु ही हमारे स्नेही हैं।

विशेष—उत्तम ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान-परिपक्व होकर यह 'भृगु' बनता है। उत्तम कर्मेन्द्रियोंवाला बनकर यह 'अङ्गिरा' होता है। यह 'भृग्वङ्गिराः' ही अगले सूक्त का ऋषि है। यह कुष्ठ ओषधि के प्रयोग से ज्वर आदि रोगों को नष्ट कर डालता है।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'तक्मनाशन' कुष्ठ

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः। कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥

१. हे **कुष्ठ**-कुष्ठ नामक ओषधे! **यः**-जो तू **गिरिषु**=पर्वतों पर **अजायथाः**-उत्पन्न होती है, वह तू **वीरुधां बलवत्तमः**-लताओं में सर्वाधिक बलवाली है। हे कुष्ठ! तू **इहि**=हमें प्राप्त हो। हे **तक्मनाशन**-ज्वर को नष्ट करनेवाला! तू **इतः**=यहाँ से—हमारे शरीरों से **तक्मानं नाशयन्**-ज्वर को नष्ट कर डाल।

भावार्थ—पर्वतों पर होनेवाली कुष्ठ ओषधि ज्वर-नाशक है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिमाच्छादित पर्वतों पर होनेवाला 'कुष्ठ'

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि। धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम्॥ २ ॥

१. **सुपर्णसुवने**=पालनात्मक उत्तम ओषधियों को जन्म देनेवाले **गिरौ**=पर्वत पर **हिमवतः परिजातम्**=हिमाच्छादित प्रदेशों में उत्पन्न हुए-हुए 'कुष्ठ' को **श्रुत्वा**=सुनकर **धनैः अभियन्ति**=धनों से उसकी ओर जाते हैं—धन लेकर उस ओषधि के क्रय के लिए जाते हैं। २. इस कुष्ठ को वे **हि**=निश्चय से **तक्मनाशनम् विदुः**=ज्वरनाशक जानते हैं।

भावार्थ—कुष्ठ नामक औषध उन हिमाच्छादित पर्वतों पर होती है जो पालनात्मक उत्तम ओषधियों को जन्म देनेवाले हैं। मनुष्य धन लेकर इनके क्रय के लिए उन स्थानों पर पहुँचते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सूर्य-किरणों द्वारा अमृत की स्थापनावाला' कुष्ठ

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत॥ ३ ॥

१. **अश्वत्थः**=सर्वव्यापक प्रभु में स्थित होनेवाले (तस्य भासा सर्वमिदं विभाति) यह सूर्य **देवसदनः**=देवों का निवास-स्थान है (मर्त्यलोक में मनुष्य, चन्द्रलोक में पितर और सूर्यलोक में देव)। यह **इतः**=इस पृथिवी से **तृतीयस्याम्**=तीसरे **दिवि**=प्रकाशमय द्युलोक में है (पृथिवी,

अन्तरिक्ष, द्युलोक)। २. **तत्र** उस सूर्य में **अमृतस्य** अमृत का—सब प्राणदायी तत्त्वों का **चक्षणम्**-दर्शन होता है। यही अमृत उन हिमाच्छादित पर्वतों पर उत्पन्न कुष्ठ में सूर्य किरणों द्वारा स्थापित होता है, अतः **देवाः** सब रोगों को जीतने की कामनावाले पुरुष **कुष्ठम्** कुष्ठ को **अवन्वत**=प्राप्त करते हैं (वन संभक्तौ)।

भावार्थ—हिमाच्छादित पर्वतों पर उत्पन्न होनेवाले कुष्ठ में सूर्य-किरणों द्वारा अमृत की (अमृतमय तत्त्वों की) स्थापना होती है, इसलिए देव कुष्ठ को प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिरण्यबन्धना नौ

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत॥ ४॥

१. **दिवि** द्युलोक में यह सूर्य **हिरण्ययी नौः अचरत्** ज्योतिर्मयी नाव के रूप में गमन कर रहा है। द्युलोक समुद्र है तो सूर्य उसमें एक चमकीली नाव है। यह नाव **हिरण्यबन्धना** हितरमणीय वीर्य में बन्धनवाली है—सारी प्राणशक्ति इस सूर्य में ही है। २. **तत्र**-वहाँ—उस सूर्य में **अमृतस्य**-अमृत का—सब प्राणदायी तत्त्वों का **पुष्पम्**-पोषण है। यही तत्त्व सूर्य किरणों द्वारा 'कुष्ठ' ओषधि में स्थापित होता है। इसी से **देवाः**-ज्वर को जीतने की कामनावाले ज्ञानी पुरुष **कुष्ठम् अवन्वत**=कुष्ठ का संभजन करते हैं।

भावार्थ—सूर्य द्युलोकरूप समुद्र की एक चमकीली नाव है। यह सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत है। कुष्ठ ओषधि में सूर्य-किरणों के द्वारा ही इस हिरण्य का स्थापन होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

हिरण्यय अरित्र

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया।
नावो हिरण्ययीरासन्याभिः कुष्ठं निरावहन्॥ ५॥

१. गतमन्त्र में सूर्य को द्युलोकरूप समुद्र की 'हिरण्ययी नाव' कहा गया है। इस नाव में **पन्थानः** सब मार्ग **हिरण्ययाः आसन्**-ज्योतिर्मय हैं। यह द्युलोक का समुद्र सूर्य किरणों से चमक रहा है। इस नाव के **अरित्राणि**-किरणरूप चप्पू भी **हिरण्यया** ज्योतिर्मय हैं। **नावः** ये सूर्यरूपी नौकाएँ तो **हिरण्ययीः आसन्**-ज्योतिर्मय हैं ही। ब्रह्माण्ड में सब लोकों का—सब सौर जगतों का अलग-अलग सूर्य है, आठ सूर्यों का वर्णन मिलता है, अतः 'नावः' बहुवचन का प्रयोग हुआ है (आरोगो भ्राजः पाटः पतंगः स्वर्णदो ज्योतिषीमान् विभासः। कश्यपोऽष्टमः, स महामेरुं न जहाति' तै० आ० १.७.१-२)। २. ये सूर्यरूप नाव वे हैं **याभिः** जिनसे **कुष्ठम्**-कुष्ठ को **निरावहन्**-निश्चय से प्राप्त करते हैं। सूर्य की दीप्तिमयी किरणों से ही तो इस कुष्ठ का पोषण होता है।

भावार्थ—ज्योतिर्मय द्युलोक में गति करते हुए ज्योतिर्मय सूर्य की ज्योतिर्मयी किरणों से परिपुष्ट हुई हुई 'कुष्ठ' ओषधि को प्राप्त करके हम ज्वर आदि को दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

अगदता

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु। तमु मे अगदं कृधि॥ ६॥

१. हे **कुष्ठ** कुष्ठ नामक ओषधे! **इमं तं मे पूरुषम् आवह** इस मेरे रोगी पुरुष को मेरे लिए

फिर से प्राप्त करा। **तं निष्कुरु**-उसे रोग से बाहर कर दे—उसके रोग को दूर कर दे। २. **मे तम्**-मेरे उस पुरुष को **उ**-निश्चय से **अगदं कृधि**=नीरोग कर दे।

भावार्थ—कुष्ठ ओषधि हमारे रुग्ण बन्धु को रोग से बाहर निकालकर—नीरोग बनाकर फिर से हमें प्राप्त कराए।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सोमस्य हितः सखा

देवेभ्यो अधि जातो ऽसि सोमस्यासि सखा हितः।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड॥ ७॥

१. हे कुष्ठ! तू **देवेभ्यः**=सूर्य, वायु, पृथिवी आदि देवों के द्वारा **अधि जातः असि**=प्रकट हुआ है। **सोमस्य**=शरीरस्थ सोमशक्ति का तू **हितः सखा असि**-हितकर मित्र के रूप में स्थापित हुआ है। सोम-रक्षण में यह कुष्ठ सहायक है। २. **सः**-वह तू **मे अस्यै**=मेरे इस **प्राणाय**=प्राणशक्ति के लिए, **व्यानाय**-व्यानशक्ति के लिए तथा **चक्षुषे**-दृष्टिशक्ति के लिए **मृड**-सुखकर हो।

भावार्थ—कुष्ठ औषध शरीरस्थ विकारों को दूर करता हुआ प्राणादि वायुओं की क्रिया को ठीक करता है और इसप्रकार आँख आदि सब इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कुष्ठस्य उत्तमानि नामानि

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे॥ ८॥

१. यह कुष्ठ **उदङ्**=उत्तर में **हिमवतः**=हिमाच्छादित पर्वतों से **जातः**=उत्पन्न होता है। **सः**-वह यह कुष्ठ **प्राच्याम्**=पूर्व दिशा में **जनं नीयसे**=लोगों के समीप प्राप्त कराया जाता है। हिमाच्छादित पर्वतों पर उत्पन्न हुआ हुआ यह कुष्ठ सुदूर पूर्व दिशा में स्थित प्रदेशों में लोगों द्वारा उपयुक्त होता है। २. **तत्र**=वहाँ, उन प्रदेशों में **कुष्ठस्य उत्तमानि नामानि**=कुष्ठ के उत्तम नामों का **विभेजिरे**=वे लोग सेवन करते हैं। 'व्याधिः कुष्ठं पारिभाव्यं व्याप्यपाकलमुत्पलम्'—इन नामों का स्मरण करते हुए वे कहते हैं कि यह औषध (विगतः आधिर्येन) रोगों को भगानेवाली है, (कुष्णाति रोगम्) रोग को उखाड़ फेंकनेवाली है (परिभावे साधुः) रोग-पराजय में उत्तम है (व्यापे साधुः) सोमशक्ति को शरीर में व्याप्त करने में उत्तम है 'सोमस्यासि सखा हितः'। (पाकं लाति) शक्तियों का परिपाक प्राप्त कराती है, (उत्पलति) शरीर में सोम की ऊर्ध्व गति का कारण बनती है।

भावार्थ—उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों पर उत्पन्न हुआ-हुआ यह कुष्ठ पूर्व आदि दिशाओं में प्राप्त कराया जाता है। वहाँ सब इसके गुणसूचक उत्तम नामों का स्मरण करते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यक्ष्म व तक्मा का निवारण

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि॥ ९॥

१. हे **कुष्ठ**-कुष्ठ औषध! तू **उत्तमः नाम असि**-निश्चय से उत्तम है—रोगों को उखाड़ फेंकने में सर्वोत्तम है। **ते पिता उत्तमः नाम**=तेरा उत्पादक यह हिमाच्छादित पर्वत भी निश्चय

में उत्तम है—यह भी रोगों को दूर करनेवाला है। इसलिए यक्ष्मा के रोगी को पर्वत पर ले जाने के लिए कहा जाता है। २. हे कुष्ठ ! तू **सर्वं यक्ष्मं च नाशय**-सब रोगों को तो नष्ट कर ही **च**-और **तक्मानम्**-ज्वर को **अरसं कृधि**=निःसार कर दे—तू ज्वर को दूर करनेवाला हो।

भावार्थ—कुष्ठ औषध व इसका जनक हिमाच्छादित पर्वत—दोनों ही रोगों को उखाड़ फेंकने में सर्वोत्तम हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**कुष्ठस्तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**उष्णिग्गर्भानिचृदनुष्टुप्** ॥

सिर, आँखों व शरीर को नीरोग करनेवाला 'कुष्ठ'

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः। कुष्ठस्तत्सर्वं निष्करद्दैवं समह वृष्ण्यम्॥ १०॥

१. **शीर्षामयम्**-शिर सम्बन्धि रोग को, **अक्ष्योः उपहत्याम्**-दृष्टिशक्ति की क्षीणता को, **तन्वः रपः**-शरीर के दोषों को **तत् सर्वम्**-उस सबको **कुष्ठः**=यह कुष्ठ औषध **निष्करत्**-बाहर कर देता है। २. हे **समह**-तेजःसम्पन्न कुष्ठ! तेरा **वृष्ण्यम्**-बल **दैवम्**=दिव्य है, अलौकिक है, असाधरण है।

भावार्थ—कुष्ठ औषध में असाधरण शक्ति है। यह सिर, आँखों और अन्य अङ्गों को निर्दोष बनाता है। अगले सूक्त का ऋषि 'अथर्वा' है और 'लाक्षा' देवता है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**लाक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सिलाची देवस्वसा

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा॥ १॥

१. हे लाक्षे! **रात्री माता**=रात्रि तेरी माता है। रात्रि में बढ़ने के कारण लाक्षा को रात्रिरूप मातावाली कहा गया है। ओस बिन्दु इसके वर्धक होते हैं। **नभः पिता** पर्जन्य तेरा पिता है। आकाश से बरसा हुआ बादलों का पानी इस लाक्षा की वृद्धि का कारण बनता है। **अर्यमा**-सूर्य **ते** तेरा **पितामहः** पितामह स्थानापन्न है। सूर्य से उद्वाष्पित जल ही मेघ बनते हैं। मेघ लाक्षा को पैदा करते हैं। इसप्रकार सूर्य 'लाक्षा के पिता मेघों' का पिता होने से लाक्षा का पितामह हो जाता है। २. हे लाक्षे! तू **सिलाची नाम वा असि**=निश्चय से सिलाची नामवाली है (शिल श्लेषे, अञ्चु पूजायाम्) श्लेष में पूजित है—फटावों को भर देने में उत्तम है। **सा**-वह तू **देवानाम्**=सब इन्द्रियों की **स्वसा असि**=स्वसा है—उन्हें उत्तम स्थिति में रखनेवाली है।

भावार्थ—लाक्षा की उत्पत्ति रात्रि की ओस व वृष्टि-जल से होती है। यह घावों को भर देने में उत्तम है तथा इन्द्रिय-दोषों को दूर करती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**लाक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भर्त्री-न्यञ्चनी

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम्।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी॥ २॥

१. **यः**-जो **त्वा**=तुझे **पिबति**=पीता है, वह **जीवति**-मृत्यु का शिकार नहीं होता। **त्वम्**-तू **पुरुषं त्रायसे**=पुरुष को रक्षित करती है। २. **शश्वताम्**-गतिशील व्यक्तियों का तू **हि**-निश्चय से **भर्त्री असि**=भरण करनेवाली है **च**-और **जनानाम्**-लोगों के **न्यञ्चनी**-रोगों को नीचे ले

जानेवाली—रोगों को समाप्त करनेवाली है। पिये जाने पर विरेचक होती हुई यह रोगों का विरेचन ही कर देती है।

भावार्थ—लाक्षारस पिये जाने पर मनुष्य को मरने नहीं देता। यह गतिशील पुरुषों का भरण करता है और उनके रोगों का विरेचन कर देता है। ('लाक्षारस का पान करनेवाला लेटे नहीं चलता रहे')—यह संकेत स्पष्ट है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**लाक्षा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जयन्ती स्परणी

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि॥ ३॥

१. हे लाक्षे! तू **वृषण्यन्तीव कन्यला इव**=पति की अभिलाषा करनेवाली कन्या की भाँति **वृक्षं वृक्षं आरोहसि**=प्रत्येक वृक्ष पर आरोहण करती है। २. **जयन्ती**=तू रोगों को जीतनेवाली है। **प्रति आतिष्ठन्ती**=प्रत्येक रोग का मुक़ाबला करनेवाली है। **वा**=निश्चय से **स्परणी नाम असि**=स्परणी नामवाली है (to deliver from) रोगों से मुक्त करनेवाली है, (to protect) रोगों के आक्रमण से रक्षित करनेवाली है, (to gratify) प्रीति का कारण बननेवाली है, (स्पृ प्रीतिपालनयोः) नीरोगता देकर प्रीति उत्पन्न करनेवाली है।

भावार्थ—'लाक्षा' वृक्षों पर आरोहण करती है, रोगमुक्त करके प्रीति प्रदान करती है, जयन्ती है, स्परणी है। रोगों का मुक़ाबला करनेवाली प्रत्यातिष्ठन्ती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**लाक्षा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अरु की निष्कृति' लाक्षा

यद्दण्डेन यदिष्वा यद्वारुर्हरसा कृतम्।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम्॥ ४॥

१. **यत्**=तो **अरुः**=व्रण (घाव) **दण्डेन कृतम्**=दण्डे की चोट से किया गया है, **यत् इष्वा**=जो बाण के प्रहार से किया गया है, **यत् वा**=अथवा जो घाव **हरसा (कृतम्)**=छेदक शस्त्र से किया गया है, **तस्य**=उस घाव का हे लाक्षे! **त्वम्**=तू **निष्कृतिः असि**=दूर करने में सर्वथा अचूक औषध है। २. **सा**=वह तू **इमम्**=इस **पुरुषम्**=पुरुष को **निष्कृधि**=घाव से रहित कर दे—इसके घाव को भर दे।

भावार्थ—लाक्षा का प्रयोग व्रणों (घावों) को ठीक करने की अचूक औषध है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**लाक्षा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

द्रुमामय=लाक्षा

भद्रात्प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात्खदिराद्धवात्।
भद्रान्न्यग्रोधात्पर्णात्सा न एह्यरुन्धति॥ ५॥

१. हे लाक्षे! तू **भद्रात्**=उत्तम **प्लक्षात्**=प्लक्ष (पिलखन) के पेड़ से, **अश्वत्थात्**=पीपल से, **खदिरात्**=खैर से, **धवात्**=बबूल के पेड़ से, **भद्रात्**=उत्तम बड़ के पेड़ से **पर्णात्**=ढाक से **निःतिष्ठसि**=निर्यासरूप से निकलकर उसपर जम जाती है। २. हे **उरुन्धति**=घावों को भर देनेवाली लाक्षे! **सा**=वह तू **नः एहि**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—लाक्षा विविध वृक्षों से निर्यासरूप में निकलकर उन्हीं पर चिपकी होती है। यह

घाव भरने की अचूक औषध है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**लाक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वपुष्टमा निष्कृति

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि॥ ६॥

१. **हिरण्यवर्णे**-सुवर्ण के समान पीतवर्णवाली, **सुभगे**-उत्तम सौभाग्य की कारणभूत **सूर्यवर्णे** सूर्य के समान चमकती हुई, **वपुष्टमे**-(वपू रूपम् नि० ३.७) अतिशयित उत्तम रूपवाली **निष्कृते**-रोग को सर्वथा दूर करनेवाली लाक्षे! तू **रुतं गच्छासि**-रोग वा व्रण पर पहुँचती है—उस रोग वा व्रण को समाप्त करनेवाली होती है। २. तू **वा** निश्चय से **निष्कृतिः**-निष्कृति **नाम असि**-नामवाली है—सचमुच रोग को बाहर करनेवाली है।

भावार्थ—लाक्षा चमकती हुई है। यह रोग वा व्रण को दूर करके सौभाग्य का कारण बनती है। वस्तुतः यह 'निष्कृति' है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**लाक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सुभगा, शुष्मा

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते॥ ७॥

१. **हिरण्यवर्णे**-सुवर्ण के समान वर्णवाली, **सुभगे**-उत्तम सौभाग्य की कारणभूत, **शुष्मे**-बलवाली—रोगरूप शत्रु के शोषक बल से सम्पन्न **लोमश-वक्षणे** छेदनस्वभाववालों पर रोषवाली (लू छेदने, वक्ष रोषे) **लाक्षे**-लाक्षा नामक औषध! तू **अपाम् स्वसा असि** प्रजाओं की स्वसा है, उन्हें उत्तम स्थिति में लानेवाली है (सु+अस्), रोग को दूर करके तू उन्हें सौभाग्यशाली बनाती है। २. **ह**-निश्चय से **वातः**-वायु **ते आत्मा बभूव** तेरा आत्मा है—वायु से ही तू पुष्ट होती है।

भावार्थ—लाक्षा 'हिरण्यवर्णा, सुभगा, शुष्मा, लोमशवक्षणा' है। यह हमारे घावों को भरकर तथा रोगों को दूर करके उत्तम स्थिति में प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**लाक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अजबभ्रू' लाक्षा

सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता॥ ८॥

१. हे लाक्षे! तू **सिलाची नाम**-(शिल श्लेषे, अञ्चु पूजायाम्) घावों को मिला देने में पूजित है, इसी से सिलाची नामवाली है। हे **अजबभ्रु**-(अज क्षेपणे, भृ धारणे) मलों के क्षेपण के द्वारा हमारा धारण करनेवाली लाक्षे! **कानीनः**-अतिशयेन दीप्तिवाला यह सूर्य **तव पिता** तेरा पिता है, सूर्य की दीप्ति से ही वृक्षों से यह स्राव उत्पन्न होता है जो लाक्षा के रूप में वहाँ जम जाता है। २. **यमस्य**-उस सर्वनियन्ता प्रभु का **यः**-जो **श्यावः**-गतिशील (श्यै गतौ) यह **अश्वः**-घोड़े के समान सूर्य है अथवा सूर्य-किरण है **तस्य** उसकी **अस्ना**-दीप्ति से (अस् दीप्तौ) **ह**-ही **उक्षिता असि** तू सिक्त होती है, अर्थात् सूर्य किरणों की चमक से वृक्षों की त्वचा का सम्पर्क होने पर यह स्राव सा निकलता है। यह कहलाता ही 'द्रुमामय' है। यही लाक्षा है।

भावार्थ—लाक्षा व्रणों के फटाव को मिलानेवाली है। यह मल-विक्षेप द्वारा हमारा धारण

करती है। यह सूर्य किरणों की दीप्ति के सम्पर्क से वृक्ष त्वचा से स्रुत होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**लाक्षा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सरा पतत्रिणी' लाक्षा

अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति॥ ९॥

१. **अश्वस्य**=सूर्य-किरण की **अस्नः**-दीप्ति से तू सम्पतित होती है, **सा वृक्षान् अभि सिष्यदे**-वह तू वृक्षों की ओर स्रुत होती है। यह लाक्षारस वृक्षों से ही स्रुत होता है। २. सदा बहनेवाली **पतत्रिणी भूत्वा**=गतिशील होकर अथवा वृक्ष-शाखा पर चिपटे छिलकोंवाली होकर **सा**-वह हे **अरुधन्ति**-व्रणों को भरनेवाली लाक्षे! तू **नः एहि**-हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—सूर्य-किरणों की दीप्ति वृक्षत्वक् पर पड़ती है तो उससे एक रस-सा स्रुत होता है। वही लाक्षा के रूप में वहाँ वृक्षत्वक् पर चिपट जाती है। यह व्रणों को भर देनेवाली अचूक औषध है।

विशेष—लाक्षारस की उत्पत्ति में भी प्रभु-महिमा को देखनेवाला 'अथर्वा'—एकाग्रवृत्ति का पुरुष (न थर्वति) ब्रह्म का स्तवन करता हुआ कहता है—

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्म, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सीमतः सुरुचः

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ १॥

१. **वेनः**-वेन् (to go, to know, to worship) गतिशील ज्ञानी उपासक **पुरस्तात्**=सृष्टि के प्रारम्भ में **जज्ञानम्**-प्रादुर्भूत होनेवाले **प्रथमम्**=अतिविस्तृत 'प्रकृति, जीव व परमात्मा'—तीनों का ही ज्ञान देनेवाले वेदज्ञान को **सीमतः**=मर्यादा में चलने के द्वारा और **सुरुचः**-परिष्कृत रुचि के द्वारा—सात्त्विक प्रवृत्ति के द्वारा **वि आवः**-अपने हृदय में प्रकट करता है। २. **सः**-वह वेन **अस्य**-इस प्रभु के इन **बुध्न्याः**-अन्तरिक्ष में होनेवाले **उपमा**-उपमा देने योग्य अर्थात् अद्भुत (जैसे 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः') **विष्ठाः**=अलग-अलग, अपनी-अपनी मर्यादा में स्थित सूर्यादि लोकों को **वि आवः**-विशदरूप में देखता है **च**-और **सतः असतः च**-दृश्य कार्यजगत् तथा अदृश्य कारणजगत् के **योनिम्**=आधारभूत उस प्रभु को **वि वः**-अपने हृदय में प्रकट करता है। सूर्यादि लोकों में उसे प्रभु की महिमा दीखती है।

भावार्थ—सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान का प्रकाश होता है। इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि जीवन मर्यादा-सम्पन्न हो तथा उत्तम रुचिवाला हो। सब लोक-लाकान्तरों में यह क्रियाशील ज्ञानी उपासक प्रभु की महिमा को देखता है। प्रभु को ही कार्य-कारणात्मकजगत् की योनि जानता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**कर्माणि**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पथ-प्रदर्शक वेदज्ञान

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान्नो अत्र मा दभन्तद्व एतत्पुरो दधे॥ २॥

१. **ये**-जो **वः** तुम्हारे **प्रथमाः** पहले **अनाप्ताः**-अज्ञानी पुरुष **यानि कर्माणि**-जिन कर्मों को **चक्रिरे**-करते हैं, वे अज्ञानवश किये गये भ्रान्त कर्म **अत्र**-यहाँ **नः वीरान्** हमारी वीर सन्तानों को **मा दभन्**-मत हिंसित करें। **तत्**-उस कारण से **एतत्**-इस वेदज्ञान को **वः पुरः दधे** तुम्हारे आगे स्थापित करता हूँ। २. हमसे पहले के बड़े आदमी भी अज्ञानवश कुछ भ्रान्त कर्म कर बैठते हैं। उन्हें देखकर उन्हीं कर्मों में प्रवृत्त हो जाने से हानिकर परम्पराएँ चल पड़ती हैं। वे हमारे लिए हितकर नहीं होतीं। हमें चाहिए कि हम वेदज्ञान के अनुसार कार्यों को करते हुए अन्ध-परम्पराओं में बह जाने से बचें।

भावार्थ—वेदज्ञान हमारे लिए पथ प्रदर्शक हो। हम देखादेखी भ्रान्त परम्पराओं में बहकर उलटे कर्म न कर बैठें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**रुद्रगणाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

मधुजिह्वाः, असश्चतः

सहस्रधार एव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे॥ ३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जो वेदज्ञान के अनुसार कर्म करनेवाले होते हैं **ते**-वे **सहस्रधारे**-हज़ारों प्रकार से धारण करनेवाले **दिवः नाके**-उस प्रकाशमय प्रभु के आनन्दमय लोक में स्थित हुए हुए **समस्वरन्**-मिलकर प्रभु-स्तवन करते हैं, **मधुजिह्वाः** माधुर्ययुक्त जिह्वावाले होते हैं, **असश्चतः**=स्थिर स्वभाववाले होते हैं (सश्चतिर्गतिकर्मा), विषयों से चिपक नहीं जाते (सश्च् cling to)। २. ये ज्ञानी लोग इस बात को नहीं भूलते कि **तस्य**-उस प्रभु के **स्पशः** हमारे कर्मों को देखनेवाले सृष्टि नियमरूप दूत **न निमिषन्ति**-एक क्षण भी पलक नहीं मारते। **भूर्णयः**-ये नियम ही हमारा भरण पोषण करनेवाले हैं **पदेपदे**=पग पग पर **पाशिनः**=पाशों को हाथों में लिये हुए **सेतवे सन्ति**-दुष्टों के बन्धन के लिए होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु में स्थित हों, मिलकर प्रभु का स्तवन करें, मधुजिह्व बनें, विषयों में न फँसें। नियमों के तोड़ने पर प्रभु के दूत हमारे बन्धन के लिए होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**रुद्रगणाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भापञ्चपदाजगती** ॥

त्रयोदशः मासः, इन्द्रस्य गृहः

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः॥ ४॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **वाजसातये**-शक्ति की प्राप्ति के लिए **परि उ सु प्रधन्व**-चारों ओर अपने कर्त्तव्यकर्मों में खूब गतिवाला हो। इस क्रियाशीलता के द्वारा **वृत्राणि** ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **परिसक्षणि**-चारों ओर से पराभूत करनेवाला हो। २. **तत्** तब **द्विषः**-द्वेष की भावनाओं को **अर्णवेन**-ज्ञानसमुद्र से **अधि ईसये**=आक्रान्त करता है—ज्ञान प्राप्त करके द्वेष आदि से ऊपर उठता है। **सनिस्रसः नाम असि**-शत्रुओं को अतिशयेन नीचे गिरानेवाला तू निश्चय से 'सनिस्नस' है। **त्रयोदशः** दस इन्द्रियाँ, ग्यारवाँ मन, बारहवीं बुद्धि और तेरहवाँ आत्मा (इन्द्रियाणि पराण्याहुः, इन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान् परः॥) **मासः**-(मसि परिमाणे) सब वस्तुओं में परिमाण को करनेवाला—मर्यादा में चलानेवाला यह आत्मा **इन्द्रस्य गृहः**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का घर होता है, अर्थात् उस आत्मा में प्रभु का निवास होता है, जोकि तेरहवाँ बनता है—इन्द्रियों, मन और बुद्धि से ऊपर

उठता है, इन्हें वशीभूत करता है और सब बातों को माप-तोल कर करता है।

भावार्थ—हम गतिशील बनें, वासनाओं को जीतें। द्वेषादि की भावनाओं को ज्ञानसमुद्र में डुबो दें। सब वासनाओं को कुचलकर इन्द्रियों, मन व बुद्धि को वशीभूत करें तभी प्रभु को प्राप्त कर पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराण्नामगायत्री** ॥

सोमारुद्रौ

न्वे३ तेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिमहेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ५ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जब जीवात्मा इन्द्रियों, मन व बुद्धि का अधिष्ठाता बनकर तेरहवाँ होता है और सब कार्यों में माप-तोलकर वर्तनेवाला होता है तब प्रभु का निवास-स्थान बनता है। **नु**-अब हे जीव! **असौ**=वह तू **एतेन**=इस प्रभु के द्वारा **अरात्सीः**=सिद्धि को प्राप्त करता है, **स्वाहा**=अतः तू प्रभु के प्रति ही समर्पण कर। २. प्रभु के प्रति समर्पण करने पर हममें सोम और रुद्र का वास होगा। सोमशक्ति के रक्षण से हम सौम्य बनेंगे और शत्रुओं के लिए भयंकर उन्हें रुलानेवाले रुद्र होंगे। **सोमारुद्रौ**=ये सोम और रुद्र **तिग्मायुधौ**=तीक्ष्ण आयुधोंवाले हैं—युद्ध में इन आयुधों के द्वारा शत्रुओं को परास्त करनेवाले हैं। **तिग्महेती**-तीक्ष्ण वज्रवाले हैं। क्रियाशीलता-(गति=हन् गतौ)-रूप वज्र के द्वारा काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हनन करनेवाले हैं, **सुशेवौ**=आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं के विनाश के द्वारा ये उत्तम कल्याण करनेवाले हैं। ये सोम और रुद्र **इह**=इस जीवन में **नः**-हमें **सुमृडतम्**=उत्तमता से सुखी करें।

भावार्थ—जीवात्मा जब प्रभु का गृह बनता है तब अन्तःस्थित प्रभु के द्वारा सिद्धि को प्राप्त करता है। प्रभु ही इसे सोम व रुद्र तत्त्वों को (आपः+अग्नि व ज्योति) प्राप्त कराते हैं। ये तत्त्व हमारे जीवनों को सुखी बनाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराण्नामगायत्री** ॥

आपः, ज्योतिः, रसः, अमृतम्

अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ६ ॥

अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ७ ॥

१. प्रभु का घर बननेवाले, प्रभु को अपने हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित करनेवाले जीव! **असौ**=वह तू **एतेन**=इस प्रभु के द्वारा **अव अरात्सीः**=शत्रुओं को (injure, kill, destroy, exterminate) कुचल देनेवाला होता है, अतः **स्वाहा**=तू उस प्रभु के प्रति समपर्ण कर। शेष पूर्ववत्।

२. **एतेन**=इस प्रभु के द्वारा **असौ**=वह तू **अप अरात्सीः**=इन शत्रुओं को सुदूर नष्ट करनेवाला होता है, अतः **स्वाहा**=इस प्रभु के प्रति तू अपना अर्पण कर। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु की आराधना से हमारे जीवनों में सोम और रुद्रतत्त्व का—आपः+ज्योति का इसप्रकार समन्वय होता है कि जीवन में सब शत्रुओं की समाप्ति होकर रस का प्रादुर्भाव होता है और अमृत की प्राप्ति होती है (आपो ज्योती रसोऽमृतम्०)।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्** ॥

अवद्य से दूर, यज्ञ के समीप

मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित सोम और रुद्रतत्त्वों से प्रार्थना करते हैं कि **अस्मान्**=हमें

अवद्यात् निन्दनीय **दुरितात्** दुराचार से **मुमुक्तम्** मुक्त करो, **यज्ञं जुषेथाम्** यज्ञ को प्रीतिपूर्वक सेवित कराओ और इसप्रकार **अस्मासु** हममें **अमृतं धत्तम्**-अमृतत्व का स्थापन करो—हमें नीरोग और मोक्ष का पात्र बनाओ।

भावार्थ—हम सोम और रुद्रतत्त्वों के सुन्दर समन्वय से निन्दनीय दुराचारों से पृथक् रहकर यज्ञों में प्रवृत्त हों। इसप्रकार नीरोगता व मोक्ष को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**हेतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'चक्षु, मन ब्रह्म व तप' का वज्र

चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येऽ३स्माँ अभ्यघायन्ति॥ ९॥

१. हे **चक्षुषः हेते**-चक्षु के वज्र! **मनसः हेते**=मन के वज्र! **ब्रह्मणः हेते** ज्ञान के वज्र! **च**-और **तपसः हेते** तप के वज्र! तू **मेन्याः मेनिः असि** वज्रों का भी वज्र है। 'आँख से सबको भद्र दृष्टि से देखना, मन से सबके कल्याण की कामना करना, ज्ञान से सबमें आत्मभाव का होना, तप से दिव्य वृत्तिवाला बनना'—ये चार बातें वे वज्र हैं जोकि सब शत्रुओं का विनाश करनेवाले हैं। २. **ये**-जो **अस्मान् अभि** हमारे प्रति **अघायन्ति** अघ (पाप) की कामनावाले होते हैं, **ते** वे **अमेनयः सन्तु**-वज्ररहित हो जाएँ। हमारी भद्रदृष्टि, पवित्र मानसभाव, ज्ञान के कारण आत्मदृष्टि तथा तपोजन्य निःस्वार्थ वृत्ति अघायुओं को भी पवित्र बना दे। इन वज्रों के सामने उनके आयस वज्र निकम्मे पड़ जाएँ।

भावार्थ—हम भद्रदृष्टि, शुभविचार, आत्मैक्य दृष्टि तथा तपोजन्य दिव्य वृत्ति द्वारा शत्रुओं को भी मित्र बनाने में समर्थ हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

'मेन्या अमेनीन् कृणु'

योऽ३स्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा॥ १०॥

१. हे **अग्ने** परमात्मन्! **यः यः** जो जो भी **अघायुः** पाप की कामनावाला **चक्षुषा** अशुभ दृष्टि से **मनसा**-अशुभभावों से **चित्या** ज्ञान के दुरुपयोग से **च**-तथा **आकूत्या** अशिवसंकल्प से **अस्मान् अभिदासात्** हमें विनष्ट करना चाहता है, **त्वम्** आप **तान्**-उन सबको **मेन्या**-वज्र द्वारा **अमेनीन्**-वज्ररहित **कृणु**-कीजिए, **स्वाहा**-हम आपके प्रति अपना अर्पण करते हैं। २. चाहिए तो यह कि हम सभी को भद्रदृष्टि से देखें, मन में सभी के प्रति भद्र भावनावाले हों, ज्ञान से सबमें आत्मभाववाले हों तथा शिवसंकल्प ही करें, परन्तु यदि कोई इन पवित्र साधनों का दुरुपयोग करता हुआ हमें विनष्ट करना चाहता है तो प्रभु उस **अघायु**-पापी के इन वज्रों को अवज्र करने की कृपा करें।

भावार्थ—हम अघायु न बनें और हमारे 'चक्षु, मन, चित्त व संकल्प' अघायुओं के लिए वज्र-तुल्य बनें। ये अघायुओं को वज्ररहित करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वात्मको रुद्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

इन्द्रस्य गृहः (गृह्णाति, गृह्+क)

इन्द्रस्य गृहो ऽसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः
सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽ स्ति तेन॥ ११॥

१. हे प्रभो! आप **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **गृहः असि**=ग्रहण करनेवाले—स्वीकार करनेवाले हैं, **तं त्वा प्रपद्ये**=मैं उन आपकी शरण में आता हूँ, **तं त्वा प्रविशामि**=उन आपमें मैं प्रवेश करता हूँ। २. **सर्वगुः**=सब ज्ञानेन्द्रियोंवाला, **सर्वपूरुषः**=सब पौरुषोंवाला (पुरुषस्य भावः पौरुषम्), **सर्वात्मा**=सब मनोबलवाला (आत्मा=मन), **सर्वतनूः**-पूर्ण स्वस्थ शरीरवाला मैं **यत् मे अस्ति**=जो कुछ मेरा है, **तेन सह**=उसके साथ आपकी शरण में आता हूँ—आपमें ही प्रविष्ट होता हूँ।

भावार्थ—हे प्रभो! आप जितेन्द्रिय पुरुष को स्वीकार करते हो। मैं अपनी ज्ञानेन्द्रिय, पौरुष, मन व शरीर को उत्तम बनाता हुआ इन सबके साथ आपमें प्रवेश करता हूँ, आपकी शरण में आता हूँ। जो कुछ मेरा है, वस्तुतः वह सब आपका ही है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वात्मको रुद्रः** ॥ छन्दः—**१२-१३ पङ्क्तिः, १४ स्वराट्पङ्क्तिः** ॥

शर्म, वर्म, वरूथ

इन्द्र॑स्य॒ शर्मा॑सि। तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्वा॑गुः
सर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽ स्ति॒ तेन॑॥ १२॥
इन्द्र॑स्य॒ वर्मा॑सि। तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्वा॑गुः
सर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽ स्ति॒ तेन॑॥ १३॥
इन्द्र॑स्य॒ वरू॑थमसि। तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्वा॑गुः
सर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽ स्ति॒ तेन॑॥ १४॥

१२. हे प्रभो! आप **इन्द्रस्य**-जितेन्द्रिय पुरुष की **शर्म असि**-(blessing, protection, house) रक्षास्थली हो। जितेन्द्रिय पुरुष आपमें निवास करता हुआ अपने को शत्रुओं से सुरक्षित कर पाता है। शेष पूर्ववत्।

१३. हे प्रभो! आप **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष का **वर्म असि** कवच हो। आप इस जितेन्द्रिय पुरुष को कामदेव के बाणों के आक्रमण से इसप्रकार बचाते हो जैसेकि कवच हमें शत्रु के बाणों से बचाता है। शेष पूर्ववत्।

१४. हे प्रभो! आप **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष की **वरूथम् असि**=ढाल हो। एक जितेन्द्रिय पुरुष अपने पर होनेवाले काम-क्रोधरूप वज्र-प्रहारों से अपने को बचाने के लिए आपको अपनी ढाल बनाता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे रक्षक हैं, प्रभु ही कवच हैं, प्रभु ही हमारी ढाल हैं—प्रभु का स्मरण ही हमें शत्रुओं के आक्रमण से आक्रान्त होने से बचाएगा।

अगले सूक्त में भी ऋषि 'अथर्वा' ही है।

७ [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**विराड्गर्भाप्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

'वीर्त्सा, असमृद्धि, अराति' से दूर

आ नो॑ भर॒ मा परि॑ ष्ठा अरा॒ते मा नो॑ रक्षी॒र्दक्षि॑णां नी॒यमा॑नाम्।
नमो॑ वी॒र्त्सार्या॒ अस॑मृद्धये॒ नमो॑ अ॒स्त्वरा॑तये॥ १॥

१. हे प्रभो! **नः**=हमारा **आभर**-समन्तात् भरण कीजिए, **मा परिष्ठाः**=आप हमसे दूर न होओ। आपकी समीपता में ही हम दान आदि उत्तम वृत्तिवाले बने रहेंगे और धनलोलुप न बनेंगे।

हे **अराते** अदान की वृत्ते! **नियमानाम्**-प्राप्त कराई जाती हुई **नः**-हमारी **दक्षिणाम्**-दान में देय धन को **मा रक्षीः** मत रख ले, अर्थात् दान देते-देते हम उस देय धन को रोक ही न लें। २. इस **वीर्त्स्यै** विशिष्टरूप से ऋद्धि की प्राप्ति की इच्छा के लिए **नमः**=हम दूर से नमस्कार करते हैं। इसप्रकार **असमृद्धये**=असमृद्धि के लिए भी **नमः**-नमस्कार करते हैं। दान देते हुए हम कभी असमृद्ध तो होंगे ही नहीं, अतः **अरातये**-इस अदानवृत्ति के लिए **नमः अस्तु** दूर से नमस्कार हो।

भावार्थ—हे प्रभो ! हमसे वीर्त्सा दूर हो जाए। हम वीर्त्सा के कारण दान ही न दें, ऐसा न हो। परिणामतः असमृद्धि हमसे दूर ही रहे। दानवृत्ति तो हमारे धनों को बढ़ाती ही है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दानवृत्ति का पोषण

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम्। नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २ ॥

१. गतमन्त्र के अनुसार मनुष्य जब 'वीर्त्सा' वाला हो जाता है तब वह अपने समय के किसी कृपण धनी पुरुष को अपना आदर्श बनाता है—उसे अपने सामने आदर्श के रूप में रखता है कि मैं भी इतना ही धनी हो जाऊँ। मन्त्र में कहते हैं कि **अराते** हे अदानवृत्ते! **यम्**-जिस **परिरापिणम्**-बहुत ही बोलनेवाले, बड़ी आत्मश्लाघा करनेवाले पुरुष को—धनाभिमानी पुरुष को **पुरः धत्से**-तू अपने सामने रखती है, हम तो **ते**-तेरे **तस्मै**=उस पुरुष के लिए **नमः कृण्मः**-नमस्कार करते हैं—उसे अपने से दूर रखते हैं। हम उसे अपना आदर्श नहीं बनाते। २. हे अदानवृत्ते! तू **मम**=मेरी **वनिम्**=इस सम्भजन वृत्ति को—धन को बाँटकर खाने की वृत्ति को **मा व्यथयीः**-मत पीड़ित कर। मैं धन के लोभ में अदानवृत्तिवाला न बनूँ। मैं अदानी धनी को अपना आदर्श न बना लूँ।

भावार्थ—अपने धनित्व का बखान करनेवाले कृपण व्यक्ति को हम अपना आदर्श न बना लें। हमारी दानवृत्ति कभी खण्डित न हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वनिः देवकृता

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम्।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३ ॥

१. **नः** हमारी **देवकृता**-प्रभु से उत्पन्न की गई—प्रभु ने जिसका वेद में आदेश दिया है वह **वनिः**-दानवृत्ति (सम्भजनशीलता) **दिवा नक्तं च**-दिन और रात **प्रकल्पताम्**-अधिक-और अधिक शक्तिशाली बने। २. **वयम्**-हम **अरातिम् अनु**=अदानवृत्ति का लक्ष्य करके **प्रेमः (प्र इमः)**=प्रकर्षेण आक्रमण करते हैं। इस **अरातये**-अदानवृत्ति के लिए **नमः अस्तु**-नमस्कार हो—इसे दूर से ही छोड़ते हैं।

भावार्थ—प्रभु से उपदिष्ट दानवृत्ति हममें फूले-फले। अदानवृत्ति को हम कुचल दें। इसे दूर से ही नमस्कार कर दें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

सरस्वती अनुमति

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥ ४ ॥

१. **भगं यन्तः**=ऐश्वर्य को प्राप्त होते हुए हम **सरस्वतीम्**=विद्या की अधिष्ठातृदेवता सरस्वती को तथा **अनुमतिम्**=शास्त्रानुकूल कर्म की मति को **हवामहे**=पुकारते हैं। हम ऐश्वर्यशाली होकर ज्ञान की रुचिवाले तथा शास्त्रानुकूल यज्ञादि कर्मों के करने की वृत्तिवाले बने रहें, अन्यथा यह धन हमें विलास की ओर ले जाएगा। २. मैं सदा **देवहूतिषु**=देवों के आह्वानवाली सभाओं में **देवानां जुष्टाम्**=देवों की प्रिय **मधुमतीम्**=माधुर्यवाली **वाचम्**=वाणी को **अवादिषम्**=बोलूँ। मैं सदा सत्सङ्गों में उपस्थित होऊँ और मधुर वाणी ही बोलूँ।

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली होकर हम विद्यारुचि व शास्त्रानुकूल कर्मों की प्रवृत्तिवाले बनें, सत्संगों में सम्मिलित हों और मधुर शब्द ही बोलें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सरस्वती**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ज्ञान+श्रद्धा

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा॥ ५॥

१. **अहम्**=मैं **मनोयुजा**=जिसमें मन को लगाया गया है, उस **सरस्वत्या**=ज्ञान की अधिष्ठातृदेवता की उपासक **वाचा**=वाणी से **यं याचामि**=जिस वस्तु को माँगता हूँ, **सोमेन**=उस शान्त **बभ्रुणा**=सर्वाधार—सबके धारक प्रभु से **दत्ता**=दी गई **श्रद्धा**=श्रद्धा **तम्**=उस वस्तु को **अद्य**=आज **विन्दतु**=प्राप्त कराए। २. एकाग्र मन से सरस्वती की आराधना करता हुआ जो व्यक्ति ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करता है, वह जिस वस्तु को चाहता है, उसे श्रद्धा के द्वारा प्राप्त करने में समर्थ होता है। ज्ञान से हम विवेकपूर्वक ठीक ही वस्तु की याचना करते हैं और श्रद्धा के द्वारा प्रयत्न करते हुए उस वस्तु को प्राप्त कर पाते हैं।

भावार्थ—हम एकाग्र मन से स्वाध्याय करते हुए ज्ञान का वर्धन करें। ज्ञान होने पर विवेकपूर्वक वस्तुओं की कामना करें और श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करते हुए उन्हें प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अरातयः**॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

वनिम्-वाचम्

मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत॥ ६॥

१. उपासक प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! **नः**=हमारी **वनिम्**=सम्भजनवृत्ति को—बाँटकर खाने की वृत्ति को **मा**=मत **वि ईर्त्सीः**=विगत वृद्धिवाला कीजिए—हमारी सम्भजनवृत्ति घटे नहीं बढ़ती ही जाए। हमारी **वाचम्**=इस ज्ञान की वाणी को भी **मा**=मत विगत वृद्धिवाला कीजिए। हमारे ज्ञान की वाणियाँ भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाएँ। **उभौ**=ये दोनों **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश की देवता इन्द्र और अग्नि **नः**=हमारे लिए **वसूनि आभरताम्**=वसुओं का—धनों का भरण करनेवाले हों। २. **नः सर्वे**=हमारे कुल के सब लोग **दिप्सन्तः**=सदा धनों के देने की कामनावाले हों। हे हमारे कुल के सब लोगो! तुम **अरातिं प्रतिहर्यत**=अदानवृत्ति पर आक्रमण करनेवाले होओ (हर्य गतौ), आदनवृत्ति को समाप्त करके देने की वृत्तिवाले बनो।

भावार्थ—हम सम्भजन की वृत्तिवाले व स्वाध्यायशील बनें। बल व प्रकाश हमें वसुओं को प्राप्त करानेवाले हों। हमारे कुल में सभी दान की वृत्तिवाले हों, अदानवृत्ति पर आक्रमण करके हम उसे विनष्ट कर डालें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

निमीवन्तीम् नितुदन्तीम्

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि। वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते॥ ७॥

१. हे **असमृद्धे**-ऐश्वर्य के अभाव! **परः अप इह** हमसे परे सुदूर प्रदेश में चला जा। हम **ते**-तेरे लिए **हेतिम्**-वज्र को **विनयामसि** विशेषरूप से प्राप्त कराते हैं, अर्थात् वज्रप्रहार द्वारा तेरा विनाश करते हैं। असमृद्धि को नष्ट करनेवाला वज्र क्रियाशीलता ही है। २. हे **अराते**- अदानशीलते! दान न देने की वृत्ते! **अहम्**-मैं **त्वा**-तुझे **निमीवन्तीम्**-(निमी -Shut the eyes, मी to destroy) आँखों को बन्द कर देनेवाली, अर्थात् ज्ञान पर पर्दा डाल देनेवाली तथा विनाशकारिणी और **नितुदन्तीम्** परिणाम में निश्चय से पीड़ित करनेवाली **वेद**-जानता हूँ। अदानशीलता 'अज्ञान, ह्रास व पीड़ा' का कारण बनती है।

भावार्थ—हम श्रम द्वारा असमृद्धि को दूर करें तथा दानशीलता द्वारा ह्रास व कष्टों से बचें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अदानशीलता व घोर निर्धनता

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम्।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च॥ ८॥

१. हे **अराते**-अदानशीलते! **उत**=निश्चय से **नग्ना बोभुवती**-नग्न होती हुई तू **जनम्** मनुष्य को **स्वप्नया सचसे**-स्वप्नावस्था से समवेत कर देती है। अदानशील मनुष्य अत्यन्त निर्धन अवस्था में पहुँचकर अपनी पहली स्थिति के स्वप्न ही लिया करता है—उसे स्वयं ही वह अवस्था स्वप्नतुल्य लगने लगती है। २. हे अदानशीलते! तू **पुरुषस्य**-इस कृपण पुरुष के **चित्तम्**-चित्त को **च**-और **आकूतिम्**-संकल्पों को **वीर्त्सन्ती**-विगत ऋद्धिवाला कर देती है। कृपणता मनुष्य के चित्त व संकल्पों को समाप्त कर देती है। यह मनुष्य को भीषण निर्धनता में ले जाकर सुला सा देती है। यह सोया हुआ पुरुष अपनी पूर्वावस्था के स्वप्न ही लिया करता है।

भावार्थ—अदानशीलता मनुष्य को घोर निर्धनता में ले-जाती है। उसका चित्त व संकल्प सब नष्ट हो जाता है। यह दीन अवस्था में सोया हुआ-सा पूर्वावस्था के स्वप्न ही लिया करता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

हिरण्यकेशी निर्ऋति (तामस कृपणता)

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः॥ ९॥

१. कृपण व्यक्ति वह है जो धन होते हुए भी उस धन का दान व भोग में व्यय नहीं करता। दान में तो धन व्यय करता ही नहीं, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी धन-व्यय करता हुआ संकोच करता है, अतएव दुर्गति को प्राप्त होता है। धन की कमी न होने से वहाँ सोने का प्रकाश है (हिरण्य केश रश्मि), परन्तु कृपणता ने वहाँ आफ़त मचाई हुई है। यही 'हिरण्यकेशी निर्ऋति' है। **तस्यै**-उस **हिरणकेश्यै निर्ऋत्यै**-सुवर्ण के प्रकाशवाली निर्ऋति-दुर्गति के लिए मैं **नमः अकरम्** दूर से ही नमस्कार करता हूँ। २. **या**-जो **महती** बड़ी प्रबल है (Mighty), **महोन्माना**-महान् परित्राणवाली है। यह कृपणता बढ़ती जाती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अरातयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

राजस कार्पण्य

हिर॑ण्यवर्णा सु॒भगा॑ हिर॑ण्यकशिपुर्म॒ही।
तस्यै॑ हिर॑ण्यद्रापयेऽरा॑त्या अकरं॒ नम॑ः॥ १०॥

१. वह कृपण व्यक्ति जो दान देने में संकोच करता है, परन्तु अपने भोगों पर खुला खर्च करता है, राजसी वृत्तिवाला कृपण है। इसका घर भोग-विलास की वस्तुओं से चमकता है, परन्तु यह दान नहीं दे पाता, **तस्यै**=उस **हिरण्यद्रापये**-सुवर्ण को कवच की भाँति धारण करनेवाली (द्रापि कवच द०) **अरात्यै**=अदानवृत्ति के लिए **नमः अकरम्**-मैं नमस्कार करता हूँ—इसे अपने से दूर ही रखता हूँ। २. यह अराति **हिरण्यवर्णा**-स्वर्ण के वर्णवाली है—स्वर्ण का ही सदा वर्णन करती है, **सुभगा**-देखने में बड़ी भाग्यवती—चमकती हुई है, **हिरण्य-कशिपुः**=स्वर्ण के आच्छादनोंवाली है, **मही**-महिमावाली है—देखने में कितनी बड़ी है।

भावार्थ—कृपण राजस पुरुष अपने घर के लिए भौतिक साधनों को खूब ही जुटाता है। इसका घर चमकता प्रतीत होता है, सौभाग्यशाली लगता है। यह बड़ा कहाता है। हम इस राजसी कृपणता से ऊपर उठें, धनों का व्यय भोगों में न करके दान में करें।

अगले सूक्त में भी ऋषि 'अथर्वा' ही है।

अथैकादशः प्रपाठकः

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः **अथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वैकंकत इध्म

वैक॑ङ्कतेने॒ध्मेन॑ दे॒वेभ्य॒ आज्यं॑ वह। अग्ने॒ ताँ इ॒ह मा॑दय॒ सर्व॒ आ य॑न्तु मे॒ हव॑म्॥ १॥

१. जैसे 'कंकतिका' बालों में से मैल को दूर कर देती है (comb off=remove), उसी प्रकार वह ज्ञानदीप्ति जो जीवन में से काम-क्रोध आदि को दूर कर देती है, यहाँ 'वैकङ्कत इध्म' कही गई है (इन्धी दीप्तौ)। इस **वैकङ्कतेन इध्मेन**-विशेषरूप से मलों का वारण करनेवाली ज्ञानदीप्ति के हेतु से हे **अग्ने**=प्रभो! **देवेभ्यः आज्यं वह**-विद्वानों से हमारे लिए ज्ञानरूपी घृत प्राप्त कराइए। २. **तान्**-उन देवों को **इह**-यहाँ—हमारे जीवनों में **मादय**—अनान्दित कीजिए। हम इन ज्ञानियों का सत्कार करें, वे हमसे प्रसन्न रहें और **सर्वे**-वे सब **मे हवम्**-मेरी पुकार को सुनकर **आयन्तु**-मुझे प्राप्त हों। मेरा घर सदा ज्ञानियों का अतिथिगृह बना रहे।

भावार्थ—ज्ञान वह कंकतिका (कंघी) है जो काम-क्रोध आदि मलों का वारण करती है। मुझे ज्ञानियों से यह ज्ञान प्राप्त होता रहे। हम ज्ञानियों का सम्पर्क करें और उनके प्रिय बनें।

ऋषिः **अथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

ऐन्द्राः अतिसराः

इन्द्रा या॑हि मे॒ हव॑मि॒दं क॑रिष्यामि॒ तच्छृ॑णु।
इ॒म ऐ॒न्द्रा अ॑तिस॒रा आकू॑तिं॒ सं न॑मन्तु मे।
तेभि॑ः शकेम वी॒र्यं॑ जात॑वेद॒स्तनू॑वशिन्॥ २॥

१. हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशाली प्रभो! **मे हवम् आयाहि**-मेरी प्रार्थना को सुनकर आप मुझे प्राप्त हों। हे प्रभो! मैं अपना **इदं करिष्यामि**=जो कर्त्तव्यकर्म करूँगा, **तत् शृणु**=उसे आप सुनिए।

वस्तुतः आपकी शक्ति से शक्तिमान् होकर ही तो मैं इस कार्य को कर पाऊँगा। २. **इमे** ये **ऐन्द्राः**-प्रभु प्राप्ति के निमित्त किये गये **अतिसराः**-अतिशयित—विशिष्ट प्रयत्न **मे आकूतिं संनमन्तु**-मेरे संकल्प के प्रति सन्नत हों। मुझे प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामना हो और मैं उस कामना को कार्यान्वित करने के लिए यत्न करूँ। ३. हे **जातवेदः** सर्वज्ञ! **तनूवशिन्** हमारे शरीरों के वास्तविक शासक प्रभो! **तेभिः** उन अतिसरों के द्वारा हम **वीर्यं शकेम**=शक्ति प्राप्त करने में समर्थ हों।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के निमित्त हम प्रभु-स्मरणपूर्वक अपने कर्त्तव्यकर्मों को करते चलें। इन कर्मों को करने का ही हमारा संकल्प हो। ये कर्म हमें शक्तिशाली बनाएँ।

ऋषिः=**अथर्वा**॥ देवता—**विश्वेदेवाः**॥ छन्दः—**भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः**॥

अदेव के सुधार के लिए

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन॥ ३॥

१. यदि कोई हमारा विरोध करता है तो प्रभु ठीक मार्ग पर चलनेवाले हम लोगों का रक्षण करें और उस अदेववृत्ति के व्यक्ति को उचित दण्ड दें। हे **देवाः**-देवो! **यत्** जो **असौ**-वह **अदेवः सन्**-अदेव (न देने की) वृत्तिवाला होता हुआ व्यक्ति **अमुतः**-उस सुदूर प्रदेश से—हमारे विरोधी पक्ष से **चिकीर्षति** हमारा हानिकर कर्म करना चाहता है तो **अग्निः**=वे प्रभु **तस्य** उसके **हव्यं मा वाक्षीत्**-हव्यपदार्थ का वहन न करें—प्रभु उसे आवश्यक पदार्थों से वञ्चित करें। वह इसप्रकार दरिद्रता में व्यथित हो कि उसमें पर पीड़न की शक्ति ही न रहे। २. **देवाः**-विद्वान् लोग **अस्य हवं मा उपगुः**-उसकी पुकार को सुनकर उसे प्राप्त न हों—विद्वानों से उसका बहिष्कार किया जाए। ये विद्वान् **मम एव हवं एतन**-मेरी ही पुकार पर प्राप्त हों। इसप्रकार यह अदेव सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा को अनुभव करे।

भावार्थ—हे देवो! यदि कोई अदेव वृत्ति का व्यक्ति देववृत्ति के व्यक्तियों को पीड़ित करना चाहता है तो प्रभु उसे हव्य पदार्थ प्राप्त न कराके उसे दण्डित करें तथा विद्वान् लोग उसके आमन्त्रण को अस्वीकार करके उसे सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा को अनुभव कराएँ।

ऋषिः=**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः**॥

इन्द्रस्य वचसा हत

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत।
अविं वृकइव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत॥ ४॥

१. हे **अतिसराः** अतिशयेन गतिशील पुरुषो! **अतिधावत** तुम गति द्वारा अपने जीवन को अति शुद्ध बनाओ। **इन्द्रस्य वचसा हत** उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के वचन से—उसके आदेश के अनुसार सम्पूर्ण समाज के शत्रु को मार डालो। यदि उसके सुधरने की आशा नहीं है तो उसे प्राणों से वञ्चित करना ठीक ही है। २. **इव**-जैसे **वृकः अविम्**-एक भेड़िया भेड़ का मथन कर डालता है, इसप्रकार तुम इस समाज शत्रु को **मथ्नीत**-कुचल डालो। **सः**=वह **वः**=तुमसे **जीवन् मा मोचि**-जीता हुआ न छूट जाए। **अस्य** इसके **प्राणम्**-प्राण को **अपिनह्यत**-बाँध डालो। इसकी प्राणशक्ति इसप्रकार नियन्त्रित कर दी जाए कि यह समाज की कुछ भी हानि न कर सके।

भावार्थ—हम गति द्वारा अपने जीवन को शुद्ध बनाएँ। प्रभु के आदेश के अनुसार समाज-

शत्रु को उचित दण्ड देना आवश्यक हो तो वह दिया जाए अथवा उसकी गतिविधियों को पूर्णरूप से नियन्त्रित कर दिया जाए।

ऋषिः=**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अपभूति के कारणभूत विद्वान् को दण्ड

यम॒मी पु॒रोद॑धि॒रे ब्र॒ह्माण॒मप॑भूतये।
इन्द्र॒ स ते॑ अध॒स्प॒दं तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑॥ ५॥

१. **अमी**-ये समाज के शत्रु **यम्**=जिस **ब्रह्माणम्**=ज्ञानी को भी **अपभूतये**=राष्ट्र की अपभूति (अनैश्वर्य) के लिए **पुरः दधिरे**=आगे स्थापित करते हैं, हे **इन्द्र**=राजन्! **सः ते अधस्पदम्** वह भी तुझसे पादाक्रान्त किया जाए, अर्थात् यदि किसी ज्ञानी की चेष्टाएँ भी समाज-विरोधी हैं—राष्ट्र के अनैश्वर्य के लिए हैं, तो उसे भी दण्डित किया ही जाए। २. **तम्**-उस ज्ञानी को भी **मृत्यवे प्रत्यस्यामि**-मृत्यु के लिए फेंकता हूँ, कई बार इन्हें समाप्त कर देना ही राष्ट्रहित में होता है।

भावार्थ—यदि कोई अदेव पुरुष किसी विद्वान् को आगे करके राष्ट्र के अहित में प्रवृत्त होता है तो उस विद्वान् को भी दण्डित करना ही चाहिए।

ऋषिः=**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

यदि प्रेयुः

यदि॒ प्रेयु॑र्दे॒वपु॑रा॒ ब्रह्म॒ वर्मा॑णि चक्रि॒रे।
त॒नू॒पानं॑ परि॒पाणं॑ कृण्वा॒ना यदु॑पोचि॒रे सर्वं॒ तद॑र॒सं कृ॑धि॥ ६॥

१. **यदि**-यदि **देवपुराः**-देवनगरियों में निवास करनेवाले व्यक्ति **प्रेयुः**=(प्र ईयुः) शत्रु पर आक्रमण करने के लिए चलते हैं तो वे **ब्रह्म वर्माणि**=ज्ञान व प्रभु को अपना कवच **चक्रिरे**=करते हैं—ब्रह्म-कवच से ये अपना रक्षण करनेवाले होते हैं। २. ज्ञानपूर्वक तथा प्रभु-स्मरणपूर्वक **तनूपानम्**=अपने शरीरों का रक्षण तथा **परिपाणम्**=समन्तात् नगर व राष्ट्र का रक्षण **कृण्वानाः**=करते हुए ये **तत् सर्वम् अरसं कृधि**=उस सबको निःसार कर देते हैं, **यत्**-जो **उप उचिरे**=हमारे विषय में शत्रुओं ने हीन बातें कही हैं। ('कृधि'-एकवचनं छान्दसम्)। शत्रुओं की डींगों को, अभिमानभरी बातों को—उन्हें परास्त करके व्यर्थ कर देते हैं।

भावार्थ—देव लोग पहले तो आक्रमण करते ही नहीं। यदि उन्हें आक्रमण करना ही पड़ जाए तो ये प्रभु को अपना कवच बनाते हैं तथा ज्ञानपूर्वक शरीरों व राष्ट्र के रक्षण की व्यवस्था करते हुए शत्रुओं को परास्त करके उनकी अभिमानभरी बातों को निःसार कर देते हैं।

ऋषिः=**अथर्वा**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**द्व्युष्णिग्गर्भापथ्यापङ्क्तिः**॥

प्रतीचः पुनराकृधि

यान॒सावति॑स॒रांश्च॒कार॑ कृ॒णव॑च्च॒ यान्।
त्वं तानि॑न्द्र वृत्रह॒न्प्र॒तीच॑: पुन॒रा कृ॑धि॒ यथा॒मुं तृ॑ण॒हां जन॑म्॥ ७॥

१. **असौ**-वह हमारा शत्रु **यान् अतिसरान् चकार**-जिन विशिष्ट उद्योगों (धावों) को करता रहा है **च**=और **यान् कृणवत्**=जिन धावों को अब करे, हे **वृत्रहन् इन्द्र**-राष्ट्र को घेरनेवाले शत्रुओं के विनाशक शत्रुविद्रावक राजन्! **त्वम्**-आप **तान्**-उन सबको **पुनः**=फिर **प्रतीचः कृधि**-उलटे मुख भाग जानेवाला कीजिए। २. ऐसी व्यवस्था कीजिए कि **यथा**-जिससे **अमुं जनम्**=उस शत्रुभूत मनुष्य को हम **तृणहान्**=विनष्ट कर सकें।

भावार्थ—समझदार राजा प्रभुकृपा से शत्रुओं से किये गये व किये जानेवाले सब भावों को व्यर्थ करे, शत्रुओं को उलटे पाँव भगा दे। राजा ऐसी व्यवस्था करे कि हम शत्रुभूत मनुष्य को समाप्त कर सकें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

काम आदि शत्रुओं का पराजय

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम्।
कृण्वे३ हमधरांस्तथामूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

१. **यथा**-जैसे **इन्द्रः** शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला राजा **उद्वाचनम्**-ऊँचा ऊँचा बोलनेवाले—डींग मारनेवाले शत्रुओं को **लब्ध्वा** पाकर **अधस्पदं चक्रे** उन्हें अपने पाँव तले करनेवाला होता है, अर्थात् कर्मवीर बनकर इन वाग्वीरों को परास्त कर देता है, २. **तथा** उसी प्रकार **अहम्** मैं **अमून्**-उन 'काम क्रोध लोभ' आदि शत्रुओं को **शाश्वतीभ्यः समाभ्यः** चिरकाल तक के लिए—सदा के लिए **अधरान् कृण्वे**-पाँवतले रौंद डालता हूँ—पूर्णरूप से अधीन कर लेता हूँ।

भावार्थ—जैसे एक जितेन्द्रिय राजा डींग मारनेवाले शत्रुओं को परास्त करता है, वैसे ही मैं काम क्रोधादि इन प्रबल शत्रुओं को अपने अधीन करता हूँ।

ऋषिः **अथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**षट्पदाद्व्यनुष्टुब्गर्भाजगती** ॥

प्रभु की सहायता से काम आदि शत्रुओं का विनाश

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य। अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥ ९ ॥

१. प्रभु कहते हैं कि **अत्र** यहाँ—इसी जीवन में **एनान्** इन शत्रुओं को हे **इन्द्र** जितेन्द्रिय पुरुष! **वृत्रहन्** इन वासनाओं को विनष्ट करनेवाले पुरुष! तू **मर्मणि विध्य** मर्मस्थलों में विद्ध करनेवाला हो। **अत्र एव**-यहाँ, इस जीवकाल में ही **एनान् अभितिष्ठ** इन्हें पादाक्रान्त कर। हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! **अहम्** मैं (प्रभु) तव **मेदी** तुझ जितेन्द्रिय पुरुष का स्नेही बनता हूँ। प्रभु जितेन्द्रिय के ही मित्र होते हैं। २. एक जितेन्द्रिय पुरुष उत्तर देता है कि हे **इन्द्र**-हमारे शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! हम **त्वा अनु आरभामहे**-आपके पीछे पीछे ही—आपकी सहायता से ही इस शत्रु विनाश के कार्य को प्रारम्भ करते हैं। हम सदा **तव** आपकी **सुमतौ स्याम**-कल्याणी मति में हों।

भावार्थ—प्रभु का आदेश है कि हम इस जीवन में काम क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करने के लिए यत्नशील हों, अतः हम प्रभु की सहायता से इन्हें परास्त करनेवाले बनें।

विशेष—सब शत्रुओं का पराभव करके यह 'ब्रह्म' का सच्चा पुत्र 'ब्रह्मा' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः **ब्रह्मा** ॥ देवता—**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः—**१, ५ दैवीबृहती; २, ६ दैवीत्रिष्टुप; ३, ४ दैवीजगती** ॥

त्रिलोकी का विजेता 'ब्रह्मा'

दिवे स्वाहा ॥ १ ॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥ दिवे स्वाहा ॥ ५ ॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥

१. ब्रह्मा प्रभु से प्रार्थना करता है कि मैं **दिवे**=अपने मस्तिष्करूप द्युलोक के लिए—मस्तिष्करूप द्युलोक के पूर्ण स्वास्थ के लिए **स्वाहा**-आपके प्रति अपना समर्पण करता हूँ। **पृथिव्यै**=इस पृथिवीरूप शरीर के लिए **स्वाहा**=आपके प्रति अपना अर्पण करता हूँ। **अन्तरिक्षाय**-हृदयरूप अन्तरिक्ष की पवित्रता के लिए आपके प्रति **स्वाहा**-अपना अर्पण करता हूँ। २. **अन्तरिक्षाय**=हृदयान्तरिक्ष की पवित्रता के लिए **स्वाहा**=आपके प्रति अपना अपर्ण करता हूँ। **दिवे स्वाहा**-मस्तिष्करूप द्युलोक की उज्ज्वलता के लिए आपके प्रति अपना अर्पण करता हूँ और **पृथिव्यै स्वाहा**-शरीररूपी पृथिवी की दृढ़ता के लिए आपके प्रति अपना अपर्ण करता हूँ।

भावार्थ—ब्रह्मा वही है जिसने त्रिलोकी का विजय करके अपने को ब्रह्मलोक की प्राप्ति के योग्य बनाया है। तीनों लोकों की उन्नति समानरूप से अपेक्षित है। यही भाव क्रम-विपर्यय से सूचित किया गया है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिग्बृहतीगर्भापञ्चपदाजगती** ॥

अस्तृत

सूर्यो॑ मे॒ चक्षु॒र्वातः॑ प्रा॒णो॒३॑न्तरि॑क्षमा॒त्मा पृ॑थि॒वी शरी॑रम्।
अ॒स्तृ॒तो नामा॒हम॒यम॑स्मि॒ स आ॒त्मानं॒ नि द॑धे॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ गोपी॒थाय॑॥ ७॥

१. यह ब्रह्मा विराट् शरीर से अपने शरीर को उपमित करता हुआ कहता है कि **सूर्यः मे चक्षुः**=सूर्य ही मेरी आँख है—सूर्य ही तो चक्षु का रूप धारण करके मेरी आँखों में रह रहा है। **वातः प्राणः**-वायु ही प्राणरूप से मुझमें निवास करता है। **आत्मा**-मेरा मन **अन्तरिक्षम्** विराट् शरीर का अन्तरिक्ष है—'अन्तरा क्षि' सदा मध्यमार्ग में चलने की वृत्तिवाला है। मेरा **शरीरम्**-शरीर **पृथिवी**-पृथिवी के समान दृढ़ है। २. **अयम् अहम्**-यह मैं **अस्तृतः नाम अस्मि**=अहिंसित नामवाला हूँ। (स्तृ-to kill) विनाश से मैं परे हूँ। **सः**=वह मैं **आत्मानम्**=अपने को **द्यावापृथिवीभ्याम् निदधे**-द्युलोक व पृथिवीलोक के प्रति अर्पित करता हूँ—'द्यौष्पिता पृथिवी माता'—द्युलोक ही मेरा पिता है, पृथिवीलोक माता। ये दोनों मेरा रक्षण करते हैं। माता-पिता पुत्र का रक्षण करते ही हैं। इसप्रकार मैं **गोपीथाय**-इन्द्रियरूप सब गौओं के रक्षण के लिए समर्थ होता हूँ।

भावार्थ—सूर्यादि सब देवों का मेरे शरीर में निवास है। मैं अमर हूँ। द्युलोक व पृथिवी-लोक मेरे पिता माता हैं। ये मेरा रक्षण करते हैं और मैं इन्द्रियों के रक्षण में समर्थ होता हूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः—**पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भाचतुष्पदाऽतिजगती** ॥

उत्

उदायु॒रुद्ब॒ल॒मुत्कृ॒तमुत्कृ॒त्यामु॒न्मनी॒षामु॒दिन्द्रि॒यम्।
आयु॒ष्कृ॒दायु॑ष्पत्नी॒ स्वधा॑वन्तौ गो॒पा मे॑ स्तं गोपा॒यतं॑ मा।
आ॒त्म॒सदौ मे स्तं॒ मा मा॑ हिंसिष्टम्॥ ८॥

१. **आयुः उत्**=मेरे आयुष्य को उत्कृष्ट करो। **बलम् उत्**-मेरे बल को उन्नत करो। **कृतम् उत्**-मेरे पुरुषार्थ को बढ़ाओ। **कृत्याम् उत्**-मेरे कर्त्तव्यकर्मों को उन्नत करो। **मनीषाम् उत्**-मेरी बुद्धि को उन्नत करो और **इन्द्रियम् उत**=मेरी इन्द्रियों की शक्ति को उत्कृष्ट करो। २. यह द्युलोकरूप पिता **आयुष्कृत्**-दीर्घजीवन करनेवाला हो। **आयुष्पत्नी**=यह पृथिवीरूप माता आयुष्य का रक्षण करनेवाली हो। **स्वधावन्तौ**-उत्तम अन्नों को प्राप्त करानेवाले ये द्यावापृथिवी **मे**=मेरे **गोपा**=रक्षक **स्तम्**=हों, **मा गोपायतम्**=मेरा रक्षण करें। ये **आत्मसदौ मे स्तम्**-मेरे शरीर में

पूर्णरूप से विराजमान हों। ये **मा मा हिंसिष्टम्** मुझे हिंसित न करें। शरीर में द्यावापृथिवी की ठीक स्थिति पूर्ण स्वास्थ्य का हेतु बनती है।

भावार्थ—शरीर में द्यावापृथिवी की समुचित स्थिति 'आयु, बल, बुद्धि व इन्द्रियशक्ति की वर्धक होती है।

अगले सूक्त में भी ऋषि यह 'ब्रह्मा' ही है।

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः—१-६ **यवमध्यात्रिपदागायत्रीः**, ७ **यवमध्याककुप्** ॥

अघायु से किया गया अघ उसे ही प्राप्त हो

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ १॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ २॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ ३॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ ४॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ ५॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ ६॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात्॥ ७॥

१. साधक कहता है कि हे ब्रह्म (प्रभो)! आप **मे**-मेरे **अश्मवर्म असि** पत्थर के (सुदृढ़) कवच हैं—**ब्रह्मवर्म ममान्तरम्**। आपसे **रक्षित मा**-मुझे **यः** जो **अघायुः**-अघ (अशुभ, पाप) की कामनावाला **प्राच्याः दिशः** पूर्व दिशा की ओर से, **दक्षिणायाः दिशः** दक्षिण दिशा की ओर से, **प्रतीच्याः दिशः**-पश्चिम दिशा की ओर से **उदीच्याः दिशः**-उत्तर दिशा की ओर से, **ध्रुवायाः दिशः**-ध्रुवा दिशा की ओर से, **ऊर्ध्वायाः दिशः**-ऊर्ध्वा दिक् की ओर से तथा **दिशाम् अन्तर्देशेभ्यः**-दिशाओं के अन्तर्देशों से **अभिदासात्**-आक्रमण करके उपक्षीण करना चाहता है, **एतत्**-इस अघ को—इस उपक्षय को **सः ऋच्छात्**-वह स्वयं प्राप्त हो। २. हमारे ब्रह्म कवच से टकराकर यह अघ उस अघायु को ही पुनः प्राप्त हो। यह अघायु हमें हानि न पहुँचा सके। उसके क्रोध को हम अक्रोध से जीतनेवाले बनें, उसके आक्राशों को कुशल शब्दों से पराजित करनेवाले हों।

भावार्थ—हम ब्रह्म को अपना कवच बनाकर चलें। उस समय जो कोई भी अघायु पुरुष हमारे प्रति पाप करेगा, वह पाप लौटकर उसे ही व्यथित करेगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः—**पुरोधृत्यनुष्टुबगर्भापराष्टिश्चतुष्पदाऽतिजगती** ॥

'मनोयुजा सरस्वत्या' वाचम् (उपह्वयामहे)

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा॥ ८॥

१. मैं **बृहता**-महत्तत्त्व से **मनः उपह्वये** मन को पुकारता हूँ। महत्तत्त्व से प्राप्त होनेवाला मेरा यह मन भी महान् हो। **मातरिश्वना**-वायु से मैं **प्राणापानौ**-प्राणापान को माँगता हूँ। मेरे प्राणापान वायु की भाँति निरन्तर गतिशील हों। २. **सूर्यात् चक्षुः**-सूर्य से मैं चक्षु माँगता हूँ। सूर्याभिमुख होकर ध्यान करने से मेरी दृष्टिशक्ति ठीक बनी रहे। **अन्तरिक्षात् श्रोत्रम्**-अन्तरिक्ष

से मुझे श्रोत्रशक्ति प्राप्त हो। **पृथिव्याः शरीरम्**=पृथिवि से मुझे शरीर मिले। अन्तरिक्ष—'अन्तरिक्ष' मध्यमार्ग में चलने से श्रोत्रशक्ति ठीक बनी रहे। पृथिवी के सम्पर्क में मेरा शरीर सुदृढ़ रहे। ३. **मनोयुजा**=मन के सम्पर्कवाली **सरस्वत्या**=सरस्वती से हम **वाचम् उपह्वयामहे**=ज्ञान की वाणियों का आराधन करते हैं—मनोयोग से विद्या पढ़ेगें तो ज्ञान बढ़ेगा ही।

भावार्थ—हमारे शरीर के सब अङ्ग विराट् शरीर के अङ्गों से मेलवाले होकर उत्तम बने रहें। हम मनोयोग द्वारा सरस्वती का आराधन करते हुए ज्ञान को बढ़ाएँ।

विशेष—प्रत्येक अङ्ग में सुस्थिर ब्रह्म 'अथर्वा' बनता है। आत्म-निरीक्षण करता हुआ यह एक-एक अङ्ग को उत्तम बनाता है। (अथ अर्वाङ्) यह आत्मनिरीक्षक 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है।

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

त्वेषनृम्णः

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान्पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः॥ १॥

१. **कथम्**-कैसे **महे**-पूजा की वृत्तिवाले **असुराय**=प्राणायाम द्वारा अपने में प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाले उपासक के लिए **इह**-यहाँ **अब्रवीः**=आप उपदेश करते हैं। **कथम्**=कैसे आप **पित्रे**=सबका पालन करनेवाले **हरये**=दुःखो का हरण करनेवाले पुरुष के लिए वेदज्ञान को उपदिष्ट करते हैं। आप सचमुच **त्वेषनृम्णः**-दीप्त तेजवाले हैं। २. हे **वरुण**=सब कष्टों का निवारण करनेवाले प्रभो! आप **पृश्निम्**-इस सम्पूर्ण प्राकृतिक धन व वेदज्ञान को **दक्षिणां ददावान्**=जीव के लिए दक्षिणारूप से देते हैं। हे **पुनर्मघ**=पुनः-पुनः ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले प्रभो! **त्वम्**-आप **मनसा अचिकित्सीः**-मन से—हृदयस्थरूप से हमें ज्ञान देते हैं (कित=to know, चिकिति)।

भावार्थ—हम पूजा की वृत्तिवाले, प्राणायाम द्वारा प्राण-साधना करनेवाले, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त व दुःखों का हरण करनेवाले बनें। वे दीप्ततेज प्रभु हृदयस्थ होकर हमें ज्ञान देंगे। वे प्रभु उपासक को दक्षिणारूप में वेदज्ञान देते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

जातवेदाः

न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे।
केन नु त्वमथर्वन्काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः॥ २॥

१. हे प्रभो! मैं यह **संचक्षे**-सम्यक् देखता हूँ कि **न कामेन**=न केवल कामना से मैं **पुनः मघः**=पुनः ऐश्वर्यवाला **भवामि**=होता हूँ। इसी से मैं **कम्**=सब सुखों को देनेवाले **एतां पृश्निम्**-इस वेदज्ञान को **उप अजे**=समीपता से प्राप्त होता हूँ। आपकी उपासना करता हुआ इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए यत्नशील होता हूँ। २. हे **अथर्वन्**=(अथ अर्वाङ्) हम सबके अन्दर विचरनेवाले प्रभो! (अ-थर्व) डाँवाडोल न होनेवाले एकरस प्रभो! **त्वम्**-आप **नु**-निश्चय से **केन केन**=किस-किस अथवा किस सुख को देनेवाले **जातेन काव्येन**-प्रादुर्भूत हुए-हुए वेदरूप काव्य से **जातवेदाः असि**='जातवेदाः' नामवाले होते हैं। वस्तुतः आपका यह वेदरूपी काव्य हमारे जीवनों के सुख के लिए सर्वमहान् साधन है।

भावार्थ—केवल चाहने से मनुष्य ऐश्वर्यशाली नहीं बनता। मनुष्य को चाहिए कि प्रभु का

उपासन करके वेदज्ञान प्राप्त करे। उसके अनुसार चलता हुआ जीवन में देखे कि प्रभु ने किस अद्भुत सुखदायी वेद-काव्य का प्रादुर्भाव किया है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

न दासः, न आर्यः (न अर्यः)

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये॥ ३॥

१. वेद का ज्ञान होने पर उपासक अनुभव करता है कि **अहम्** मैं **सत्यम्**-सचमुच **काव्येन** इस वेदरूप काव्य से **गभीरः** कुछ गम्भीर वृत्ति का बना हूँ। **सत्यम्**-सचमुच **जातेन**-प्रादुर्भूत हुए-हुए इस वेदकाव्य से मैं **जातवेदाः**-प्रादुर्भूत ज्ञानवाला **अस्मि**-हुआ हूँ। २. अब गम्भीर बनकर व ज्ञान प्राप्त करके **यत् व्रतं अहं धरिष्ये** जिस व्रत को मैं धारण करूँगा वह **महित्वा** उस प्रभुपूजन के दृष्टिकोण से ही होगा। मैं वेदानुकूल कार्य करता हुआ प्रभु का उपासन करूँगा। **मे** मेरे उस व्रत को **न दासः** न कोई उपक्षय की वृत्तिवाला पुरुष और न **अर्यः** न कोई धनी वैश्य **मीमाय** हिंसित करनेवाला होगा, अर्थात् भयों व प्रलोभनों से मैं कर्त्तव्यमार्ग से विचलित न होऊँगा।

भावार्थ—वेदज्ञान मनुष्य को गम्भीर व समझदार बनाता है। इस ज्ञान से गम्भीर व समझदार बनकर जिस व्रत को यह धारण करता है, उस व्रत से इसे किसी प्रकार के भय व प्रलोभन विचलित नहीं कर पाते।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कवितरः, धीरतरः

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय॥ ४॥

१. गतमन्त्र का उपासक प्रभु की उपासना करता हुआ कहता है कि हे प्रभो! **त्वत् अन्यः कवितरः न** आपसे भिन्न कोई अधिक ज्ञानी नहीं है। हे **स्वधावन्**-आत्मधारण शक्तिवाले **वरुण** सब बुराइयों का निवारण करनेवाले प्रभो! **न मेधया धीरतरः** न ही कोई और बुद्धि के दृष्टिकोण से आपसे अधिक धीर है। आप ही सर्वाधिक बुद्धि-सम्पन्न हैं। आप ही उपासकों को बुद्धि प्राप्त कराते हैं। २. **त्वम्**-आप तो **विश्वा भुवनानि** सब लोकों को **वेत्थ** जानते हैं—आप सर्वज्ञ हैं। **सः** वह **मायी जनः**-मायावी—छल छिद्र पटु पुरुष **नु चित्**-निश्चय से **त्वत्**-आपसे **बिभाय**-भयभीत होता है।

भावार्थ—प्रभु कवितर है, धीरतर है। उस सर्वज्ञ प्रभु से मायावी अपनी माया को छिपा नहीं पाता और अन्ततः भयभीत होता है।

सूचना—माया का अर्थ प्रज्ञा भी है। प्रज्ञावान् पुरुष प्रभु को सर्वज्ञरूप में देखता है, अतः हृदय में उसका भय मानता है। यह भय ही उसे पाप से बचाता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'पर प्रकृति व अवर ब्रह्माण्ड' का ज्ञाता प्रभु

त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन्विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर॥ ५॥

१. हे **अङ्ग**-गतिशील—सब गतियों के स्रोत! **वरुण**-सब बुराइयों का निवारण करनेवाले, **स्वधावन्**=आत्मधारण शक्तिवाले, **सुप्रणीते** उत्तम प्रणयन करनेवाले प्रभो! **त्वम् हि**-आप ही **विश्वा जनिमा**-सब उत्पन्न लोकों को **वेत्थ**-जानते हैं। २. आप यह भी जानते हैं कि **एना रजसः परः अन्यत् किम् अस्ति**=इस लोकसमूह (रजांसि लोका उच्यन्ते) के परे और क्या है? हे **अमुर**-(अम गतौ) गतिशील प्रभो! अथवा अविनाशी प्रभो! (अ मुर) आप ही ठीक-ठीक यह भी जानते हो कि **एना परेण अवरम् किम्**-इस पर-(सूक्ष्म) प्रकृति से अवर—स्थूल—पीछे उत्पन्न हुआ-हुआ यह ब्रह्माण्ड क्या है?

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही सर्वज्ञ हैं। इस ब्रह्माण्ड से पर (सूक्ष्म) प्रकृति से अवर (स्थूल) इस ब्रह्माण्ड को आप ही ठीक-ठीक जानते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**पञ्चदाऽतिशक्वरी**॥

प्रकृति से परे प्रभु

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्।
तत्ते विद्वान्वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा
उप सर्पन्तु भूमिम्॥ ६॥

१. **एना रजसः परः एकम् अन्यत् अस्ति**-इस लोकसमूह से परे (सूक्ष्म) एक अन्य (विलक्षण) सूक्ष्म प्रकृतितत्त्व है। **एना एकेन परः**-इस एक प्रकृतितत्त्व से भी परे (सूक्ष्म) **दुर्णशम्** कठिनता से अदृष्ट होने योग्य, अर्थात् जिसकी महिमा इस ब्रह्माण्ड के एक-एक कण में सर्वत्र दीखती है, वह **चित्**-सर्वज्ञ, चेतनस्वरूप प्रभु है, जोकि **अर्वाक्** हमारे अन्दर ही स्थित है। २. हे **वरुण**-सब पापों के निवारक प्रभो! **ते**-आपके विषय में **तत् विद्वान्**-इस बात को जानता हुआ मैं **प्रब्रवीमि**-यह प्रार्थना करता हूँ कि **पणयः** हमारे समाज में पणि लोग—केवल व्यवहारी लोग—रुपया कमाने में ही लगे हुए लोग **अधोवचसः भवन्तु**-निम्न वचनवाले हों—इनकी बातें प्रमुखता को धारण किये न हों, अर्थात् हमारा राष्ट्र बनियों के हाथों में न हो तथा **दासः**-उपक्षय करनेवाले लोग तो **नीचैः भूमिम् उपसर्पन्तु**=भूमि के नीचे बनी जेलों में गतिवाले हों। अथवा उन्हें इसप्रकार दण्ड दिया जाए कि उन्हें इधर-उधर जाते हुए लज्जा अनुभव हो।

भावार्थ—प्रकृति से भी पर उस सूक्ष्म प्रभु को हम अपने अन्दर देखने के लिए यत्नशील हों, उस प्रभु को जिसकी महिमा कण-कण में दिखाई देती है। उस प्रभु को देखते हुए हम वणिक्वृत्ति से ऊपर उठें, केवल धन कामने में न लगे रहें और विनाश की वृत्तिवाले तो कभी भी न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरुणः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

केवल धन नहीं, निर्धनता भी नहीं

त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि।
मो षु पणीँरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः॥ ७॥

१. हे **अङ्ग**-गतिशील **वरुण** सब पापों का निवारण करनेवाले प्रभो! **त्वं हि ब्रवीषि**-आप ही हमें वेद में यह बतलाते हैं कि **पुनः मघेषु**=फिर-फिर धन ही कमाने में लगे हुए लोगों में **भूरि**-बहुत **अवद्यानि**-पाप आ जाते हैं। वे टेढ़े-मेढ़े, कुटिल साधनों से धन कमाने में प्रवृत्त हो जाते हैं। आप **एतावतः पणीन् अभि**=इतने बनियों के प्रति **मा उ सुभूत्**=मत ही हों, अर्थात् न्याय अन्याय सब मार्गों से धन कमाना ही जिनका उद्देश्य हो गया है, उन बनियों को प्राप्त

न हों। **जनासः** लोग **त्वा**-आपको **अराधसम्** ऐश्वर्यहीन **मा वोचत्**-न कहें, अर्थात् आपका स्तोता कार्यसाधक धन भी न प्राप्त करे—ऐसी स्थिति न हो। हम आपका स्तवन करते हुए पुरुषार्थ करके न्याय-मार्ग से कार्यसाधक धन को प्राप्त करें ही।

भावार्थ—धन ही धन जब जीवन का उद्देश्य हो जाता है तब हम पाप की ओर झुक जाते हैं। इन पणियों को प्रभु प्राप्त नहीं होते, परन्तु स्तोता न्याय्य मार्ग से पुरुषार्थ करता हुआ कार्यसाधक धन प्राप्त करता ही है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-महिमा का दर्शन व ऐश्वर्य-प्राप्ति

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु॥ ८॥

१. प्रभु स्तोता को विश्वास दिलाते हुए कहते हैं कि **जनासः** लोग **मा** मुझे **अराधसम्** ऐश्वर्यरहित **मा वाचत्**-न कहें। हे **जरितः**-स्तोता! मैं **पुनः**-पुनः **ते** तेरे लिए **पृश्निम् ददामि**-इस प्राकृतिक धन तथा वेदज्ञान को देता हूँ। २. तू **विश्वासु मानुषीषु दिक्षु अन्तः**-मानवों की निवास स्थानभूत सब दिशाओं में **शचीभिः** प्रज्ञानों के द्वारा **मे** मेरे **विश्वं स्तोत्रम्** सर्वत्र प्रविष्ट स्तोत्र को **आयाहि** प्राप्त हो। समझदार मनुष्य को सर्वत्र प्रभु की महिमा दीखती है। वह जहाँ भी जाता है, उस प्रभु की महिमा को देखता है। प्रभु स्मरण के कारण अन्याय्य मार्गों से धन नहीं कमाने लगता।

भावार्थ—प्रभु स्तोता के लिए सब ज्ञानों व ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। एक स्तोता सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सप्तपदः सखा

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि॥ ९॥

१. हे प्रभो! **विश्वासु मानुषीषु दिक्षु अन्तः**-मानवों की निवासभूत सब दिशाओं में **आ**-समन्तात् **ते स्तोत्राणि**-आपके स्तोत्र **उद्यतानि यन्तु** उद्यत हुए हुए गतिवाले हों। सब मनुष्य आपका स्तवन करनेवाले बनें। २. **यत् मे अदत्तः**-जो आवश्यक पदार्थ मुझे नहीं दिया गया **नु मे देहि**-निश्चय से वह मुझे दीजिए। **मे युज्यः असि** आप सदा मेरे साथ रहनेवाले हैं, **सप्तपदः सखा असि** आप तो मेरे वे सखा हैं, जिनके साथ मैं सात पग रखता हूँ। 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्—'स्वास्थ, ज्ञान, जितेन्द्रियता, हृदय की विशालता, शक्तियों का विकास, तप और सत्य'—ये वे सात पग हैं, जो मुझे आपका मित्र बनाते हैं। आपकी सहायता से ही मैं इन पगों को चल पाता हूँ।

भावार्थ—सर्वत्र प्रभु का स्तवन दृष्टिगोचर होता है। सब विचारशील लोग प्रभु का ही स्मरण करते हैं। ये प्रभु हमारे लिए सब आवश्यक पदार्थों को देते हैं। वे हमारे 'युज्य सप्तपद' सखा हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

युज्यः सखा

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि॥ १०॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **वरुण**-अपने से सब दोषों को दूर करनेवाले पुरुष! **समा नौ बन्धुः**-हमारी बन्धुता समान है, **समा जा**=हमारा प्रादुर्भाव भी समान है—हमारा दर्शन इकट्ठा ही होता है। **अहं तत् वेद**=मैं इस बात को जानता हूँ **यत्**=कि **नौ**=हम दोनों का **एषा जा**=यह प्रादुर्भाव **समा**=समान है, अर्थात् आत्मदर्शन के साथ ही परमात्मदर्शन होता है। २. **ते**=तुझे **तत् ददामि**-वह देता हूँ **यत्**-जो **अदत्तः**-आवश्यक पदार्थ तुझे दिया नहीं गया। मैं **ते**-तेरा सदा **युज्यः अस्मि**=साथ रहनेवाला मित्र हूँ। **ते**=तेरा **सप्तपदः सखा अस्मि**-सात पगों से जानने योग्य मित्र हूँ। योग-मार्ग में सात मंजिले चल चुकने पर आठवीं मञ्जिल समाधि में जानने योग्य हूँ।

भावार्थ—प्रभु हमारे बन्धु हैं। आत्मा और परमात्मा का ज्ञान साथ-साथ ही होता है। प्रभु हमें सब आवश्यक पदार्थ देते हैं। वे हमारे 'युज्य सप्तपद' सखा हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**षट्पदाऽत्यष्टिः** ॥

वयोधाः सुमेधाः

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः॥ ११॥

१. **देवः**-वे प्रकाशमय, दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु **देवाय**-देववृत्तिवाले **गृणते**-स्तोता के लिए **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन धारण करानेवाले हैं। **विप्रः**-विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले वे प्रभु **स्तुवते विप्राय**-स्तुति करते हुए विप्र के लिए **सुमेधाः**=उत्तम मेधा देनेवाले हैं। प्रभु हमें उत्कृष्ट जीवन व उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं। २. हे **स्वधावन्**-आत्मधारण शक्तिवाले **वरुण**-सब पापों का विनाश करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **अथर्वाणम्**=डाँवाडोल न होनेवाले—स्थिर वृत्तिवाले **पितरम्**-सबका पालन करनेवाले **देवबन्धुम्**=देवों के बन्धु को **अजीजनः**-प्रादुर्भूत करते हैं। जो आपका स्तोता बनता है, उसे आप 'अथर्वा, पिता व देवबन्धु' बनाते हो। ३. **तस्मै**-उस 'अथर्वा, पिता व देवबन्धु' के लिए **उ**-निश्चय से **सुप्रशस्तम्**=अति प्रशस्त **राधः**-कार्यसाधक धन **कृणुहि**=दीजिए। हे प्रभो ! आप ही **नः**-हमारे सखा **असि**=मित्र हैं **च**-और **परमं बन्धुः**=परम बन्धु हैं।

भावार्थ—हम देव बनें। प्रभु हमें उत्कृष्ट जीवन प्रदान करेंगे। प्रभु हमें सुमेधा बनाएँगे। प्रभु-स्तवन से हम 'अथर्वा, पिता व देवबन्धु' बनेंगे—विषयों में भटकेंगे नहीं, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होंगे और देवों के बन्धु होंगे। प्रभु ही हमें उत्तम मार्गों से अर्जित आवश्यक धन प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही वस्तुतः हमारे सखा और परम बन्धु हैं।

विशेष—यह अथर्वा-विषयों में न भटकने से, एक-एक अङ्ग में रस के सञ्चारवाला होता है, अतः 'अङ्गिराः' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः-**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु का दूत

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥ १॥

१. **अद्य**=आज **मनुषः**=विचारपूर्वक कर्म करनेवाला व्यक्ति मनुष्य के **दुरोणे**-इस शरीररूप

गृह में **समिद्धः** ज्ञान की अत्यन्त दीप्तिवाला बना है। जहाँ इसने शरीर को सब बुराइयों से अपनीत किया है (दुर् ओण्) वहाँ यह ज्ञान से दीप्त बना है। **जातवेदः** उत्पन्न प्रज्ञानवाला अर्थात् ज्ञानी बना हुआ, **देवः** दिव्य वृत्तिवाला होता हुआ **देवान् यजसि** देवों का यजन करता है—मान्य व्यक्तियों को आदर देता है, विद्वानों का संग करता है, उनके लिए सदा दानशील होता है। २. **मित्रमहः** हे स्नेहयुक्त तेजस्वितावाले! तू **चिकित्वान्** चेतनावाला होकर **आवह** इस ज्ञान को औरों को प्राप्त करानेवाला बन। **त्वं दूतः** तू प्रभु का सन्देशवाहक है, **कविः असि** तू क्रान्तदर्शी है—ठीक ही ज्ञान देनेवाला है। **प्रचेताः** तू प्रकृष्ट संज्ञानवाला है—लोगों को एक दूसरे के समीप लानेवाला है। तू लोगों को वह ज्ञान देता है जो उन्हें परस्पर मिलानेवाला होता है। इसप्रकार लोकहित करता हुआ तू अपनी सच्ची ब्रह्मनिष्ठता को प्रकट करता है।

भावार्थ—ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति 'शरीर गृह' को पवित्र बनाकर ज्ञान संचय करता है, देवों के सङ्ग में रहता है, स्नेहशील व तेजस्वी बनकर लोगों को ज्ञान प्राप्त कराता है। यह बड़ा समझदार होकर प्रभु का दूत बनता है।

ऋषिः—**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तनूनपात्

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥ २॥

१. हे ब्रह्मनिष्ठ! तू **तनूनपात्** अपने शरीर को गिरने नहीं देता—शरीर के स्वास्थ्य को कभी नष्ट नहीं करता। **ऋतस्य पथः यानान्** ऋत के मार्ग पर गमनों को **मध्वा** माधुर्य से **समञ्जन्** अलंकृत करनेवाला होता है। तू सदा ऋत के मार्ग पर चलता है और तेरे आने जाने के सब कर्म माधुर्य से युक्त होते हैं। तू अपनी गतियों से किसी को पीड़ित नहीं करता। हे **सुजिह्व** उत्तम जिह्वावाले! **स्वदया** तू सभी के जीवन को स्वादयुक्त बनानेवाला होता है। २. तू **मन्मानि** अपने ज्ञानों को **धीभिः**-बुद्धियों के द्वारा अथवा बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **ऋन्धन्** बढ़ानेवाला होता है, **उत**-और **यज्ञम्** यज्ञ को भी बढ़ानेवाला होता है **च** और **नः** हमसे **उपदिष्ट अध्वरम्** यज्ञ को **देवत्रा** देवों के विषय में **कृणुहि**-कर। ब्रह्मयज्ञ आदि पाँचों यज्ञों को करनेवाला बन।

भावार्थ—हम शरीर के स्वास्थ को स्थिर रक्खें, ऋत के मार्ग का मधुरता से आक्रमण करें, मधुर शब्दों से सबके मनों को आनन्दित करें, बुद्धिपूर्वक कर्म करते हुए ज्ञान को बढ़ाएँ। यज्ञ को सिद्ध करें, देवों के विषय में यज्ञों को करनेवाले हों—उनकी हिंसा से दूर रहें।

ऋषिः—**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ईड्यः, वन्द्यः

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान्॥ ३॥

१. हे **अग्ने**-परमात्मन्! आप **आयाहि** आइए, जो आप **आजुह्वानः**-समन्तात् सब आवश्यक पदार्थों को दे रहे हैं, **ईड्यः** स्तुति के योग्य हैं, **वन्द्यः** अभिवन्दनीय हैं, **वसुभिः सजोषाः** आपने निवास को उत्तम बनानेवालों के साथ समानरूप से प्रीतिवाले हैं। २. हे प्रभो! **त्वम्** आप देवानां **यह्वः** देवों में महान् **असि**-हैं, सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले हैं, **होता** आप ही सब-कुछ देनेवाले हैं। **सः** वे आप **इषितः**-हमारे द्वारा सत्कृत हुए हुए **एनान्**-इन्हें—हम सबको **यक्षि** अपने साथ संगत कीजिए। **यजीयान्**-आप अतिशयेन यष्टा हैं—अत्यन्त पूज्य हैं और

हमारे लिए सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप स्तुति के योग्य, वन्दनीय हैं, आप ही सर्वमहान् देव हैं, सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले हैं। आप हमें प्राप्त होओ।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्राचीनं बर्हिः

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम्॥ ४॥

१. **अस्याः पृथिव्याः**-इस शरीर के **वस्तोः**-उत्तम निवास के लिए **प्राचीनं बर्हिः**-(प्र अञ्च) अग्रगति की भावनावाला वासनाशून्य हृदय **अह्नाम् अग्रे**-दिनों के अग्रभाग में ही, अर्थात् प्रातः ही **प्रदिशा**-वेदोपदिष्ट मार्ग से **वृज्यते**-दोष-वर्जित किया जाता है। २. दोषशून्य किये जाने पर यह हृदय **वितरम्**-खूब **वरीयः**-विशाल **उ**-और निश्चय से **विप्रथते**-विशेषरूप से विस्तीर्ण बनता है। यह विस्तीर्ण हृदय **देवेभ्यः**-दिव्य गुणों के लिए **स्योनम्**-सुखकर होता है, अर्थात् इस विस्तीर्ण हृदय में दिव्य गुणों का विकास सरलता से होता है और यह हृदय **अदितये**-अखण्डन के लिए—स्वास्थ्य के लिए होता है। पवित्र हृदय का स्वास्थ्य पर उत्तम प्रभाव पड़ता ही है।

भावार्थ—प्रभु का प्रिय बनने के लिए हम हृदय को विशाल बनाएँ और शरीर को भी पूर्ण स्वस्थ रखने का प्रयत्न करें। 'वसु' बनकर ही हम प्रभु के प्रिय बन पाएँगें।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दिव्य इन्द्रिय द्वार

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः॥ ५॥

१. वसुओं की—उत्तम निवासवालों की इन्द्रियाँ **व्यचस्वतीः**-उत्तम गमनों व क्रियाओंवाली होकर **उर्विया**-विशाल हों और **विश्रयन्ताम्**-विशिष्ट कर्मों का सेवन करनेवाली हों। **न**-जिस प्रकार **जनयः**-पत्नियाँ **पतिभ्यः**-पतियों के लिए **शुम्भमानाः**-अपने को शोभित करनेवाली होती हैं, इसीप्रकार ये इन्द्रियाँ आत्मा के लिए अपने को शोभित करनेवीली हों। २. **देवीः द्वारः**-सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली ये इन्द्रियाँ **बृहतीः**-वृद्धि का करण बनें, **विश्वमिन्वाः**-सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करानेवाली हों। हे इन्द्रियो! तुम **देवेभ्यः**-दिव्य गुणों की व्याप्ति के लिए **सुप्रायणाः**-उत्तम, प्रकृष्ट गमनवाली **भवत**-होओ।

भावार्थ—हमारे इन्द्रिय द्वार प्रकृष्ट गमनवाले—विशाल हों। ये उत्तम शक्तियों, उत्तम ज्ञान व कर्मों से अपने को सुभूषित करें। इनके द्वारा हममें दिव्य गुणों का विकास होता चले।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्मयमान दिन

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने॥ ६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार इन्द्रियों के उत्तम होने पर हमारे **उषासानक्ता**=दिन व रात **आ सुष्वयन्ती**=सब प्रकार से स्मयमान होते हुए (स्मयतेः निरुपसर्गात् मकारस्य वकारः)—खिलते हुए, अर्थात् शरीर, मन व बुद्धि के दृष्टिकोण से विकास को प्राप्त होते हुए, **यजते**-यज्ञशील होते

हुए **उपाके** (उप अक् गतौ) प्रभु के समीप उपस्थित होनेवाले **योनौ निसदताम्** ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति स्थान प्रभु में नम्रता से स्थित हों। हम दिन के प्रारम्भ और रात्रि के प्रारम्भ में प्रभु की उपासना करनेवाले बनें। यह उपासना ही हमारे सर्वतोमुखी विकास का कारण बनेगी। २. ये दिन रात हमें **दिव्ये**=प्रकाश में स्थापित करनेवाले हों। ध्यान के बाद हम स्वाध्याय अवश्य करें। **योषणे** स्वाध्याय के द्वारा ये दिन रात हमें बुराइयों के अमिश्रण तथा अच्छाइयों से मिश्रित करनेवाले हों। इसप्रकार ये **बृहती**-हमारा वर्धन करनेवाले हों और **सुरुक्मे** उत्तम सुवर्ण व कान्ति को प्राप्त करानेवाले हों। ये दिन रात हममें **शुक्रपिशम्** (पिश to shape) वीर्य के द्वारा जिसका निर्माण होता है, उस **श्रियम्**-शोभा को **अधिदधाने** आधिक्येन धारण करनेवाले हों। वीर्य रक्षा से ज्ञान-अग्नि की दीप्ति के द्वारा हमारा जीवन शक्ति-सम्पन्न बनता है।

भावार्थ—हमारे दिन रात स्मयमान हों। ये दिन रात यज्ञों में व्यापृत तथा प्रभु की उपासना में लगे हुए हमारी बुराइयों को दूर करते हुए तथा अच्छाइयों को प्राप्त कराते हुए हमें श्रीसम्पन्न करें।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दैव्या होतारा (प्राणापान)

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥ ७॥

१. हमारे प्राणापान **दैव्या होतारा** उस देव को प्राप्त करानेवाले होते हैं। **प्रथमा**-ये इस शरीर में रहनेवाले देवों में प्रथम हैं। **सुवाचा** उत्तम वाणीवाले हैं। प्राणापान की क्षीणता से वाणी भी क्षीण होने लगती है। **मनुषः**-इस मननशील मनुष्य के **यजध्यै**-प्रभु से मेल करने के लिए **यज्ञं मिमाना**=ये प्राणापान यज्ञों का निर्माण करते हैं। २. साधक के ये प्राणापान **विदथेषु**-ज्ञानयज्ञों में **प्रचोदयन्ता**=प्रकृष्ट प्रेरणा प्राप्त कराते हैं, **कारू**-ये प्राणापान प्रत्येक कार्य को कलापूर्ण ढंग से करानेवाले होते हैं। प्राणसाधक के कार्यों में अनाड़ीपन नहीं टपकता। ये प्राणापान **प्रदिशा**-वेदोपदिष्ट मार्ग से **प्राचीनं ज्योतिः**-(प्रअञ्च्) उन्नति की साधनभूत ज्योति को अथवा सनातन ज्ञान को **दिशन्ता**=उपदिष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्राणापान की साधना हमें प्रभु से मिलाती है, ज्ञान को बढ़ाती है, हमारे कार्यों में सौन्दर्य लाती है और सनातन ज्योति का आभास कराती है।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भारती, इडा, सरस्वती

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम्॥ ८॥

१. **नः यज्ञम्**-हमारे जीवन-यज्ञ में **भारती**=(भरतस्य सूर्यस्य इयम्) सूर्य के समान देदीप्यमान ज्ञानज्योति **तूयम्**-शीघ्र **आ एतु**-सर्वथा प्राप्त हो। **मनुष्यवत्**=एक ज्ञानी पुरुष की भाँति **इह**-इस जीवन-यज्ञ में **चेतयन्ती**-चेतना को प्राप्त कराती हुई **इडा**-यह श्रद्धा नामक देवता भी हमारे जीवन यज्ञ में शीघ्रता से प्राप्त हो। इस श्रद्धा से हमारा जीवन सत्य बातों का ही धारण करनेवाला बने। २. **भारती** व **इडा** के साथ **सरस्वतीः**=यह वाग्देवता भी आये, इसप्रकार **तिस्रः देवीः**-तीनों देवियाँ **स्वपसः**-उत्तम कर्मशील पुरुष के **इदं स्योनम्**-इस सुखमय **बर्हिः**-वासनाशून्य हृदय में **आसदन्ताम्**=आसीन हों। हम इन तीनों देवियों को अपनाने का यत्न करें।

भावार्थ—हमारे जीवनों में 'भारती, इडा व सरस्वती' तीनों देवियों का समुचित स्थान हो।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

त्वष्टा का सम्पर्क व सौन्दर्य-प्राप्ति

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्॥ ९॥

१. **यः**=जो त्वष्टा **इमे**=इस **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक को और सब भूतों को **जनित्री**=जन्म देनेवाला है, इन्हें **रूपैः अपिंशत्**=रूपों से अलंकृत करता है तथा **विश्वा भुवनानि**=सब भुवनों को रूपों से सजाता है, अर्थात् जिस त्वष्टा के कारण उस-उस पिण्ड व लोक में अमुक अमुक सौन्दर्य है, **तम्**=उस **देवम् त्वष्टारम्**=दिव्य गुणोंवाले—सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले त्वष्टादेव को, हे **होतः**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाले! **इषितः**=प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त हुआ-हुआ **यजीयान्**=अतिशयेन यज्ञशील **विद्वान्**=ज्ञानी तू **इह**=इस मानव-जीवन में **यक्षि**=संगत कर—प्रभु से अपना सम्बन्ध बना। २. वे प्रभु जैसे सूर्य आदि देवों को रूपों से अलंकृत करते हैं, तुझे भी रूपों से अलंकृत करेंगे। तू 'इषित' बन—प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाला बन। तू यजीयान् हो—अतिशयेन यज्ञशील हो। तू विद्वान् व ज्ञानी बन। इसप्रकार का बनने का यत्न करने पर ही तू प्रभु-सम्पर्क को प्राप्त करेगा। उस समय तेरा जीवन भी द्युलोक व पृथिवीलोक की भाँति रूपों से अलंकृत होगा।

भावार्थ—त्वष्टा ब्रह्माण्ड का निर्माता होकर उसे सौन्दर्य प्रदान करता है। हम उसके सम्पर्क में आएँगे तो वह हमें भी सौन्दर्य प्रदान करेगा।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वनस्पतिः, शमिता, देवः, अग्निः,

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥ १०॥

१. हे जमदग्ने! तू **त्मन्या**=स्वयं **देवानां पाथे**=देवताओं के मार्ग में, अर्थात् देवयान पर चलते हुए **समञ्जन्**=अपने जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करने के हेतु से **ऋतुथा**=ऋतु के अनुसार **हवींषि**=हव्य पदार्थों को **उपावसृज**=उपासना के साथ—प्रभु स्मरणपूर्वक अपने में डाल, अर्थात् प्रभु-स्मरणपूर्वक हव्य पदार्थों का भोजन कर। तू देवयानमार्ग से चलनेवाला बन और सात्त्विक भोजन का सेवन कर, तभी तुझमें दिव्य गुणों का विकास होगा। २. **वनस्पतिः**=तू ज्ञान की किरणों का पति बन, **शमिता**=शान्त स्वभाववाला हो। **देवः**=दिव्य गुणों का अपने में विस्तार कर, **अग्निः**=निरन्तर आगे बढ़नेवाला हो। इसप्रकार 'वनस्पति, शमिता, देव व अग्नि' **हव्यम्**=हव्य पदार्थों को, पवित्र भोजनों को **मधुना घृतने**=शहद व घृत के साथ **स्वदन्तु**=खानेवाले हों। वस्तुतः ये 'हव्य, मधु व घृत' रूप मधुर पदार्थ ही हमें 'वनस्पति, सविता, देव व अग्नि' बनाते हैं।

भावार्थ—हम देवयानमार्ग से चलते हुए जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करने के लिए सात्त्विक भोजन का ही सेवन करें—'हव्य, मधु व घृत' का ही प्रयोग करें।

ऋषिः=**अङ्गिराः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

यज्ञशील गृहस्थ

सद्यो जातो व्य ꣡मिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः॥ ११॥

१. **जातः** आचार्य गर्भ से उत्पन्न हुआ हुआ—आचार्यकुल से लौटा हुआ **सद्यः** शीघ्र ही **यज्ञं व्यमिमीत** यज्ञों को करनेवाला बनता है। एक सद्गृहस्थ को पाँचों महायज्ञ करने ही चाहिएँ, तभी यह **अग्निः** आगे बढ़नेवाला होता है, **देवानां पुरोगाः अभवत्** आगे बढ़ते बढ़ते यह देवों का भी अग्रगामी बनता है—देवों में भी इसका स्थान प्रथम होता है। २. **अस्य होतुः** इस सृष्टियज्ञ के होता परमात्मा के **प्रशिषि**-प्रकृष्ट निर्देश में **ऋतस्य** सत्य वेदवाणी के, अर्थात् प्रभु के वेद में प्रतिपादित मार्ग के अनुसार **स्वाहाकृतम्** अग्नि में 'स्वाहा' शब्दोच्चारणपूर्वक डाली हुई **हविः** हवि को—हव्य पदार्थ को **देवाः**=माता, पिता आचार्य व अतिथि आदि देव **अदन्तु** खाएँ, अर्थात् मनुष्य वेदोपदिष्ट मार्ग से अग्निहोत्र करके माता, पिता, आचार्य व अतिथि आदि को श्रद्धापूर्वक खिलाये। इन्हें खिलाकर यज्ञशेष का खाना ही हमारी अमरता का साधन है।

भावार्थ—आचार्यकुल से समावृत्त होकर हम गृहस्थ बनें और यज्ञशील हों। वेद के आदेश के अनुसार अग्निहोत्र करें। माता पिता आदि को खिलाकर उनके पश्चात् भोजन करें, अतिथियों से पूर्व न खाने लग जाएँ। यज्ञशेष का सेवन करनेवाले ही देव व अमर बनते हैं।

विशेष—अगले सूक्त में विष-निवारण का प्रकरण है। जीवन के लिए विष की बाधा एक प्रबल विघ्न है। इसका दूर करना आवश्यक ही है, सर्पों को समाप्त करनेवाला 'गरुत्मान् गरुड़' अगले सूक्त का ऋषि है। गरुत्मान् सर्पों को समाप्त करता है। विष चिकित्सक को भी 'गरुत्मान्' कह दिया गया है—

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः **गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**जगती**॥

विष-निवारण

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि ते वि॒षम्।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्रभ॒मिरे॑व॒ धन्व॒न्नि ज॑जास ते वि॒षम्॥ १॥

१. **दिवः कविः** ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले, **वरुणः**-सब कष्टों के निवारक प्रभु ने **हि** निश्चय से **मह्यम्** मुझे **ददिः**-यह ज्ञान दिया है, **उग्रैः वचोभिः** इन तेजस्वी वचनों से **ते विषम्**-तेरे विष को **निरिणामि** दूर किये देता हूँ। सर्पविष से मूर्च्छा आने लगती है। उग्र वचनों से जहाँ सर्पदष्ट व्यक्ति को उत्साहित करना होता है, वहाँ उसे मूर्च्छित न होने देने के लिए भी ये वचन उपयोगी होते हैं। २. **खातम्** घाव अधिक खुदा हुआ हो, **अखताम्**-न खुदा हुआ हो **उत** अथवा **सक्तम्**-विष केवल ऊपर ही चिपका हुआ हो, उस सब विष को **अग्रभम्** मैं लिये लेता हूँ—बाहर कर देता हूँ। **धन्वन् इरा इव** रेतीले स्थानों में जैसे जलधारा नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार **ते विषं निजजास** तेरा विष भी निःशेष—नष्ट होता है।

भावार्थ—प्रभु ने वेद में विष निवारण के उपायों का प्रतिपादन किया है। एक विष-चिकित्सक तेजस्वी वचनों से सर्पदष्ट पुरुष को मूर्च्छित न होने देता हुआ उसके विष को दूर करने का प्रयत्न करता है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

विष की रुधिरशोषकता

यत्ते॑ अपो॑दकं वि॒षं तत्त॑ ए॒तास्व॑ग्रभम्।
गृ॒ह्णामि॑ ते मध्य॒मम॑त्त॒मं रस॑मु॒ताव॒मं भि॒यसा॑ नेश॒दादु॑ ते॥ २॥

१. हे सर्प! **यत्**-जो **ते**-तेरा **अप+उदकम्**=(जल से रहित) रुधिर को सुखा देनेवाला

विषम्=विष है, **ते**=तेरे **तत्**=उस विष को **एतासु अग्रभम्**=इन नाड़ियों में पकड़ लेता हूँ। इसे इसप्रकार बाँध-सा देता हूँ कि यह सारे शरीर में फैल न जाए। २. मैं **ते**=तेरे **उत्तमं मध्यमम् उत अवमं रसम्**=प्रबल, मध्यम व निचली कोटि के, अर्थात् सामान्य विष को भी **गृह्णामि**=वश में करने का प्रयत्न करता हूँ। **आत् उ**=अब निश्चय से **ते**=तेरे **भियसा**=भय से भी **नेशत्**-मनुष्य नष्ट हो जाता है, अतः मैं तेरे नाममात्र अंश को भी दूर करने का प्रयत्न करता हूँ।

भावार्थ—सर्पविष रुधिर का शोषण कर देता है। इसे नाड़ियों में जहाँ—का तहाँ रोकने का प्रयत्न किया जाए। यह सारे शरीर में फैल न जाए। अब इसे शरीर से बाहर निकालने का यत्न किया जाए। इसके थोड़े-से अंश के भी शरीर में रह जाने से विनाश का भय होता है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**जगती**॥

विष-चिकित्सा में उच्च शब्द का स्थान

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमसइव ज्योतिरुदेतु सूर्यः॥ ३॥

१. **मे रवः**=मेरा शब्द **नभसा तन्यतुः न**=मेघ से उत्पन्न होनेवाली गर्जना के समान **वृषा**=शक्तिशाली है। मैं इस **उग्रेण वचसा**=शक्तिशाली शब्द से **ते**=तेरे इस विष को **बाधे**=बाधित करता हूँ, **आत् उ**=और अब निश्चय से **ते**=तेरा भी बाधन करता हूँ। २. **अहम्**=मैं **नृभिः**=मनुष्यों के साथ **अस्य**=इस सर्प के **तं रसम्**=उस विषरस को **अग्रभम्**=वश में कर लेता हूँ। **तमसः ज्योतिः इव**=अन्धकार के विनाश से जैसे ज्योति का उदय होता है, उसी प्रकार इस सर्पदष्ट पुरुष के जीवन में भी विषान्धकार के विनाश के साथ **सूर्यः उदेतु**=जीवन के सूर्य का उदय हो।

भावार्थ—सर्पविष चिकित्सा में ऊँचे शब्द का भी महत्त्व है। यह सर्पदष्ट को मूर्च्छा में चले जाने से बचाता है। चिकित्सक अन्य मनुष्यों के साथ सर्पविष के भय को दूर करने का प्रयत्न करता है तथा सर्पदष्ट मनुष्य के जीवन से मूर्च्छान्धकार को दूर करके जीवन के सूर्य को उदित करता है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्पविष से सर्प को ही समाप्त करना

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम्॥ ४॥

१. हे सर्प! **चक्षुषा**=मैं अपनी दृष्टिशक्ति से **ते चक्षुः हन्मि**=तेरी आँख की शक्ति को नष्ट करता हूँ तथा **विषेण**=विष से **ते विषं हन्मि**=तेरे विष को समाप्त करता हूँ। २. हे **अहे**-हननशील सर्प! तू **म्रियस्व**=मृत्यु को प्राप्त हो, **मा जीवीः**=जी मत, **विषम्**=विष **त्वा**=तुझे **प्रत्यग् अभ्येतु**=लौटकर पुनः प्राप्त हो।

भावार्थ—साँप की आँखों में आँख गड़ाकर उसे देखा जाए तो वह डसता नहीं। सर्प के डसने पर सर्पदष्ट पुरुष उसे डसे तो वह विष लौटकर साँप को ही मारनेवाला होता है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वच्छता द्वारा सर्पादि को दूर रखना

कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम्॥ ५॥

१. हे **कैरात**-जंगल में रहनेवाले सर्प! **पृश्ने** चितकबरे साँप! **उपतृण्य**-घास में रहनेवाले साँप! **बभ्रो** भूरे रंग के साँप! **असिताः**-काले फनियर साँपों! **अलीकाः**-मलिन स्थानों पर रहनेवाले सर्पो! **मे आशृणुत**-मेरी इस बात को सुनो। २. **मे सख्युः**-मेरे मित्र के **स्तामानम् अपि मा स्थात** आहते में भी मत ठहरो। **आश्रावयन्तः** चारों ओर दूर-दूर अपनी ध्वनि को सुनाते हुए **विषे निरमध्वम्**-अपने विष में ही रमण करनेवाले बनो।

भावार्थ—हम घर को तथा चारों ओर के प्रदेशों को इसप्रकार स्वच्छ रक्खें कि वहाँ सर्प आदि का भय न हो। ये सर्प हमारे घरों से दूर ही रहें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

समुचित प्रयोग द्वारा विष-बाधा को दूर करना

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँइव॥ ६॥

१. **असितस्य** काले फनियार साँप के **तैमातस्य**-गीले स्थान पर रहनेवाले (तिम आर्द्रीभावे) साँप के **बभ्रोः** भूरे रंगवाले **च** और **अपोदकस्य**-जल से दूर रहनेवाले साँप के विष को **अहम्** मैं इसप्रकार **विमुञ्चामि** छुड़ाता हूँ **इव**-जैसेकि **सात्रासाहस्य**-सबको पराजित करनेवाले **मन्योः**-क्रोधी राजा के **रथान्**-रथों को समझदार मन्त्री घोड़ों से मुक्त करता है तथा **इव** जैसे वह इस क्रोधी राजा के **धन्वनः** धनुष से **ज्याम्**-डोरी को **अव** दूर करता है। २. यहाँ प्रसङ्गवश यह संकेत स्पष्ट है कि कभी-कभी एक शक्तिशाली क्रोधी राजा जोश में आक्रमण की तैयारी करता है, समझदार मन्त्री को उसे शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसीप्रकार वैद्य सर्प विष की बाधा को समुचित प्रयोगों से दूर करने का प्रयत्न करे।

भावार्थ—एक वैद्य तैमात, बभ्रु व अपोदक सर्पों की विष बाधा को समुचित प्रयोगों द्वारा दूर करने के लिए यत्नशील हो।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आलिगी व विलिगी की बन्धनशक्ति

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ॥ ७॥

१. **आलिगी**-चारों ओर घूमनेवाली **च**-और **विलिगी च** टेढ़ी चालवाली सर्पिणी **पिता च माता च**-चाहे वह नर है, चाहे मादा हम **वः**-तुम्हारे **बन्धुः**-बन्धन को **सर्वतः**-सब प्रकार से **विद्म**-जानते हैं। किस प्रकार तुम लिपट जाती हो, वह हम समझते हैं। २. अतः **अरसाः**-हमारे लिए निःसार होती हुई तुम **किं करिष्यथ**-क्या करोगी? तू हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

भावार्थः—हम सर्पों की बन्धन शक्ति को समझें और अपने लिए उन्हें निःसार करनेवाले हों। उनके बन्धन को हम सरलता से पृथक् कर सकें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उरुगूला की दुहिता

उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या। प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम्॥ ८॥

१. **उरुगूलायाः**-बहुत ही हिंसा करनेवाली (गूरी हिंसागत्योः), **असिक्न्या**-कृष्णसर्पिणी की **दुहिता**-पुत्री यह सर्पिणी **दासी जाता**-बहुत ही उपक्षय करनेवाली हो गई। २. इन **सर्वासाम्** सब **दद्रुषीणाम्**-दाद पैदा करनेवाली सर्पिणियों का **प्रतङ्कम् विषम्**-कष्टप्रद विष

अरसम्=नीरस हो जाए।

भावार्थ—कृष्ण सर्पिणी की सन्तान हमें डसकर हमारी सारी त्वचा को दादों से भरा हुआ कर देनेवाली है। यह हमारे उपक्षय का कारण न बने।

ऋषिः—**गरुत्मान्** ॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥

कर्णा श्वावित्

कर्णा श्वावित्तदब्रवीद्गिरेरवचरन्तिका।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम्॥ ९॥

१. **कर्णा श्वावित्**-बड़े-बड़े कानोंवाली साही **गिरेः अवचरन्तिका**-पर्वत से नीचे उतरती हुई **तत् अब्रवीत्**-मानो यह कहती है कि **याः काः च इमाः खनित्रिमाः**-जो कोई ये भूमि खोदकर, बिल बनाकर रहनेवाले कृमि-कीट हैं **तासाम्**-उनका **विषम्**-विष **अरसतमम्**=अतिशयेन निःसार है।

भावार्थ—सम्भवतः बिल बनाकर रहनेवाले इन कृमियों का विष उसी बिल से निकली मिट्टी के प्रयोग से दूर हो जाते हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्** ॥ देवता—**सर्पविषनाशनम्** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥

ताबुब=तस्तुव

ताबुवं न ताबुवं न घेत्त्वमसि ताबुवम्। ताबुवेनारसं विषम्॥ १०॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत्त्वमसि तस्तुवम्। तस्तुवेनारसं विषम्॥ ११॥

१. ताबुव शब्द (तु+इण्, वा +क) तु तथा वा धातु से बना है। तु के अर्थ वृद्धि, गति व हिंसा है। 'वा' के गति तथा गन्धन (हिंसन)। इसप्रकार ताबुव का अर्थ है वृद्धि तथा हिंसा को प्राप्त करानेवाली। ताबुव एक ओषधि है। सर्प भी ताबुव है। वृद्धि को प्राप्त कराने से ओषधि 'ताबुव' है, हिंसा को प्राप्त कराने से सर्प 'ताबुव' है। **ताबुवम्**=यह ताबुव ओषधि **न ताबुवम्**=हिंसा को प्राप्त करानेवाली नहीं। हे सर्प! इस ओषधि के प्रयोग से **त्वम् घ इत्**=तू भी निश्चय से **न ताबुवम् असि**=हिंसा को प्राप्त करानेवाला नहीं रहता। **ताबुवेन**=इस ताबुव ओषधि से **विषम् अरसम्**=विष निःसार हो जाता है। २. तस्तुव शब्द भी 'तस उपक्षये' तथा 'वा गतिगन्धनयोः' से बनता है। तस्तुव ओषधि उपक्षय का नाश करती है। सर्प भी तस्तुव है—यह उपक्षय को प्राप्त कराता है। **तस्तुवम्**=उपक्षय का विनाश करनेवाली यह तस्तुव ओषधि **न तस्तुवम्**=विनाश को प्राप्त करानेवाली नहीं। ३. हे सर्प! इस **तस्तुवे**-तस्तुव ओषधि का प्रयोग होने पर **घ इत्**=निश्चय से **त्वम्**=तू **तस्तुवं न असि**=उपक्षय को प्राप्त करानेवाला नहीं है। **तस्तुवेन**=इस तस्तुव ओषधि के प्रयोग से **विषम् अरसम्**=सर्प विष निःसार हो जाता है।

भावार्थ—ताबुव व तस्तुव ओषधि के प्रयोग से सर्प-विष निःसार हो जाता है।

विशेष—अपने को सर्प-विष आदि के भय से सुरक्षित करके अपने जीवन को शक्तिशाली बनानेवाला शुक्र अगले सूक्त का ऋषि है—

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वनस्पति

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन्नसा। दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि॥ १॥

१. हे **ओषधे** शरीरस्थ दोष का दहन करनेवाली ओषधे! **सुपर्णः** गरुड़ **त्वा**=तुझे **अनु अविन्दत्**-खोजकर पानेवाला होता है। **सूकरः**=सूअर **त्वा**-तुझे **नसा अखनत्**-अपनी नासिका से खोदनेवाला होता है। २. हे **ओषधे**-ओषधे! **त्वम्**=तू **दिप्सन्तम्**-हमें नष्ट करने की इच्छावाले को **दिप्स**=नष्ट करनेवाली हो। **कृत्याकृतं अवजहि** हमारा छेदन करनेवाली व्याधि को सुदूर विनष्ट कर।

भावार्थ—भूमि से खोदकर प्राप्त की जानेवाली यह ओषधि हमारे रोग का विनाश करती है। यह शक्तियों का छेदन करनेवाली व्याधि को दूर करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यातुधान व कृत्याकृत् का अवहनन

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान्दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे॥ २॥

१. हे **ओषधे**=दोषों का दहन करनेवाली ओषधे! **यातुधानान् अवजहि**=पीड़ा का आधान करनेवाले रोगों को तू सुदूर विनष्ट कर। **कृत्याकृतम् अवजहि**-हमारी शक्तियों का छेदन करनेवाले रोग को दूर भगा दे। २. **अथ उ**-अब निश्चय से **यः**-जो भी रोग **अस्मान् दिप्सति**-हमें विनष्ट करना चाहता है, हे ओषधे! **तम्**-उसे **उ**-निश्चय से **त्वम् जहि**-तू विनष्ट कर दे।

भावार्थ—यह ओषधि पीड़ा के जनक, शक्तियों के छेदक, विनाशक रोग को नष्ट करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

वन्य पशु के समान ध्वंसक का वशीकरण

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत॥ ३॥

१. हे **देवाः**-विद्वानो! **त्वचः परि**=त्वचा को चारों ओर से **परिकृत्य**=छिन्न करके **रिश्यस्य**-एक वन्य पशु के (मृगविशेष के) **परीशासं इव**-पूर्ण वशीकरण के समान **कृत्याम्**-एक दुष्ट पुरुष से किये गये छेदन प्रयोग को **कृत्याकृते**-इस छेदन करनेवाले के लिए ही **निष्कम् इव**=स्वर्णहार के समान **प्रतिमुञ्चत**=धारण कराओ। २. एक दुष्ट पुरुष हमारा विनाश करने के लिए कुछ प्रयोग करता है। उसके प्रति हमारा व्यवहार ऐसा हो कि वह विनाश-क्रिया उस विनाशक के ही गले का स्वर्णहार बने। हम उस कृत्या से प्रभावित न हों। बुद्धिपूर्वक व्यवहार करते हुए इन छेदन भेदन के प्रयोगों से हम अपने को सुरक्षित रक्खें।

भावार्थ—जैसे एक मृग को वश मे किया जाता है, उसी प्रकार ध्वंसक पुरुष को वश में करके हम उससे की जानेवाली कृत्या को उसी के लिए लौटानेवाले बनें।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कृत्याकृत् को उचित दण्ड

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्॥ ४॥

१. **कृत्याम्**=कृत्या को—छेदन-भेदन के प्रयोग को **हस्तगृह्य**-हाथ में ग्रहण करके, अर्थात्

कृत्या का प्रयोग करनेवाले को प्रयोग के समय ही पकड़कर (having caught him red-handed) **कृत्याकृते**-इस कृत्या को करनेवाले के लिए **पुनः परा नय**=फिर वापस करा। २. इस कृत्या को **अस्मै समक्षम् आधेहि**=इसके सामने स्थापित करनेवाला हो, **यथा**=जिससे यह कृत्या **कृत्याकृतं हनत्**=उस कृत्या करनेवाले को ही विनष्ट करे। ऐसा किया जाए कि कृत्या के दुष्परिणामों को देखकर वह कृत्याकारी आगे से उस पाप को न करने का निश्चय करे।

भावार्थ—छेदन-भेदन करनेवाने को अपराध करते समय ही पकड़कर इसप्रकार व्यवहृत किया जाए कि वे इन प्रयोगों के दुष्परिणामों को देखकर इन्हें फिर से न करने का निश्चय करे।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

सुखो रथः

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते।
सुखो रथइव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥ ५॥

१. **कृत्याः**-मारक साधन **कृत्याकृते सन्तु**=हिंसक के लिए ही हों—ये कृत्याएँ उन हिंसकों पर ही लौट जाएँ। **शपथः शपथीयते**=गलियाँ गाली देनेवाले के पास लौट जाएँ। २. हम न इन कृत्याओं से प्रभावित हों और न ही इन शपथों से अपने मानस-सन्तुलन को खोएँ। **सुखः रथः इव**=(सु+ख) उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला यह शरीर रथ की भाँति **वर्तताम्**=हो। यह मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़े। **कृत्या**=हिंसन की क्रिया **पुनः**=फिर **कृत्याकृतम्**=इस छेदन क्रिया के करनेवाले को प्राप्त हो।

भावार्थ—हम दुर्जनों की कृत्याओं व शपथों से प्रभावित न होते हुए उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले शरीर-रथ से निरन्तर आगे बढें।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अश्वम् इव अश्वाभिधान्या

यदि स्त्री यदि वा पुमान्कृत्यां चकार पाप्मने।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या॥ ६॥

१. **यदि**-यदि **स्त्री**=कोई स्त्री **यदि वा**=अथवा **पुमान्**=पुरुष **पाप्मने**=पाप के लिए—अशुभ के लिए **कृत्यां चकार**=हिंसक प्रयोग करता है तो **ताम्**=उस हिंसक प्रयोग को **उ**=निश्चय से **तस्मै नयामसि**=उस कृत्याकृत् के लिए ही प्राप्त कराते है, उसी प्रकार **इव**=जैसेकि **अश्वाभिधान्या**=घोड़े को बाँधनेवाली रज्जु से **अश्वम्**-अश्व को पुनः उसके स्थान पर पहुँचाया जाता है। २. हम कृत्याकृत् से किसी प्रकार का बदला लेने की भावना से कोई कार्य न करें। कृत्या को कृत्याकृत् के सामने इसलिए उपस्थित करें, जिससे कि वह उसकी अकरणीयता को समझ ले।

भावार्थ—कृत्या करनेवाला चाहे स्त्री हो या पुरुष, इस कृत्या को पुनः उसी के पास पहुँचाया जाए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

इन्द्रेण सयुजा वयम्

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम्॥ ७॥

१. **यदि वा देवकृता असि**=यदि कोई विपत्ति देवकृत है, अर्थात् अतिवृष्टि व अनावृष्टि

आदि के कारण कृषि आदि न होने का कष्ट आया है, **यदि वा**-अथवा यदि कोई कष्ट **पुरुषैः कृता** पुरुषों से किया गया है, **तां त्वा**-उस तुझ आधिदैविक व आधिभौतिक कष्ट को **इन्द्रेण सयुजा वयम्**-प्रभु के साथ मिलकर अथवा राजा के साथ मिलकर हम **पुनः नयामसि** फिर दूर ले-जाते हैं। २. प्रभु की उपासना करते हुए हम अपने को आधिदैविक व आधिभौतिक कष्टों से बचाने में समर्थ हों। इसीप्रकार राजा की सहायता से—राजा को पूर्ण सहयोग देते हुए हम इन कष्टों को दूर करने के लिए यत्नशील हों।

भावार्थ—प्रभु स्मरण के साथ राष्ट्र में राजा को पूर्ण सहयोग देते हुए हम आधिदैविक व आधिभौतिक कष्टों को दूर करने के लिए यत्नशील हों ।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराडनुष्टुप्** ॥

प्रतिहरणेन

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि॥ ८ ॥

१. हे **अग्ने** राष्ट्र को उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले राजन्! आप **पृतनाषाट्** शत्रु सैन्यों का पराभव करनेवाले हैं, **पृतनाः सहस्व** इन शत्रु-सैन्यों का पराभव कीजिए। २. **कृत्याम्** छेदन भेदन की क्रिया को **कृत्याकृते**-इस छेदन क्रिया करनेवाले के लिए **पुनः**-फिर **प्रतिहरणेन**-वापस लौटाने के द्वारा **हरामसि**-विनष्ट करते हैं। कृत्या जब इस कृत्याकृत् को प्राप्त होती है तब उसे इसकी हानि का प्रत्यक्ष अनुभव होता है और वह इसे न करने का निश्चय करता है। इसप्रकार कृत्या का विनाश हो जाता है।

भावार्थ—राजा सैन्यों के द्वारा आक्रान्ता शत्रु-सैन्यों का पराभव करता हुआ उन्हें पुनः छेदन-भेदन करने की क्रिया से रोकता है ।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रक्षणात्मक न कि आक्रमणात्मक

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि॥ ९ ॥

१. **कृतव्यधनि** (कृतानि व्यधनानि यया) जिसने शत्रु विनाश के लिए आयुध तैयार किये हुए हैं, ऐसी सेने! **यः चकार**-जो राष्ट्र पर आक्रमण करता है, **तम्**-उसे तू **विध्य**-अपने अस्त्रों से विद्ध कर। **इत्**-उसे ही **जहि**=विनष्ट कर। २. **अचक्रुषे**=आक्रमण न करनेवाले के लिए **वयम्** हम **त्वाम्**-तुझे **वधाय**-वध के लिए **न संशिशीमहि**-नहीं उत्तेजित करते—तीक्ष्ण नहीं बनाते।

भावार्थ—हम सेनाओं द्वारा आक्रान्ता के आक्रमणो को रोकने के लिए ही यत्नशील हों, अनाक्रमकों पर स्वयं आक्रमण न करने लगें।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥

अभिष्ठितः स्वजः इव

पुत्रइव पितरं गच्छ स्वजइवाभिष्ठितो दश।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः॥ १० ॥

१. हे **कृत्ये**-छेदन भेदन की क्रिये! तू **कृत्याकृतं पुनः गच्छ**=कृत्या करनेवाले को पुनः

इसप्रकार प्राप्त हो **इव**=जैसेकि **पुत्रः पितरम्**=पुत्र पिता की ओर जाता है। हे कृत्ये! तू कृत्याकृत् की ओर **गच्छ**=जा। तू इस कृत्याकृत् को इसप्रकार **दश**=डसनेवाली हो, **इव**=जैसेकि **अभिष्ठितः**=पाँव से आक्रान्त **स्वजः**=लिपट जानेवाला सर्प डसता है (ष्वञ्ज)। २. हे कृत्ये! तू इसप्रकार कृत्याकृत् के पास पुनः **गच्छ**=जा, **इव**=जैसे **बन्धम् अवक्रामी**=बन्धन को (उल्लंघ्य प्रतिगामी) तोड़कर जानेवाला इष्ट स्थान पर जाता है।

भावार्थ—पुत्र पिता को प्राप्त होता ही है, पादाक्रान्त सर्प काटता ही है, बन्धन को तुड़ाकर प्राणी इष्ट स्थान की ओर जाता ही है, इसीप्रकार कृत्या कृत्याकृत् को प्राप्त होती ही है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिपदासाम्नीत्रिष्टुप्** ॥

एणी इव, वारणी इव, मृगी इव

उदेणीव वारण्य भिस्कन्दं मृगीव। कृत्या कर्तारमृच्छतु॥ ११॥

१. **कृत्या**=छेदन-भेदन की क्रिया **कर्तारम् उद्ऋच्छतु** इस कृत्याकृत् को इसप्रकार प्राप्त हो **इव**=जैसेकि **एणी**=एक मृगी आक्रान्ता पर झपटती है, **वारणी**=हथिनी जैसे **अभिस्कन्दम्**=आक्रान्ता पर आक्रमण करती है, अथवा **इव**=जैसे **मृगी**=एक वन्य व्याघ्री (हिंस्र जन्तु) शिकारी पर झपट्टा मारती है।

भावार्थ—कृत्या कृत्याकृत् पर ही आक्रमण करे। उसे ही यह विनष्ट करनेवाली हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

इष्वा ऋजीयः (पततु)

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥ १२॥

१. हे **द्यावापृथिवी** द्युलोक व पृथिवीलोक! आपके अन्दर रहनेवाले **तं प्रति**=उस व्यक्ति के प्रति **कृत्या**=यह छेदन भेदन की क्रिया **इष्वाः**=बाण से भी **ऋजीयः**=अधिक सरल रेखा में, अर्थात् अतिशीघ्र **पततु**=जानेवाली हो, जो इस कृत्या को करनेवाला है। २. **सा**=वह **कृत्या तम्**=उस **कृत्याकृतम्**=कृत्याकृत् को **पुनः**=फिर इसप्रकार **गृह्णातु**=पकड़ ले **इव**=जैसेकि कोई शिकारी **मृगम्**=हिरन को पकड़ लेता है।

भावार्थ—कृत्या कृत्या करनेवाले का ही विनाश करती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥

अग्निः इव, उदकम् इव

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्।
सुखो रथइव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः॥ १३॥

१. यह **कृत्या**=छेदन भेदन की क्रिया **प्रतिकूलम्**=हमारे विरोधी को **अग्निः इव एतु**=अग्नि के समान प्राप्त हो—यह उसे जलानेवाली हो, परन्तु यही **कृत्या अनुकूलम्**=हमारे अनुकूल को **उदकम् इव**=पानी की भाँति प्राप्त हो—उसे यह विनष्ट न कर सके। २. **सुखः**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला यह शरीर **रथः इव**=जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिए रथ के समान हो। **कृत्या**=विनाश की क्रिया **कृत्याकृतम्**=विनाशक को ही **पुनः**=फिर **वर्तताम्**=प्राप्त हो। यह उसी का विनाश करनेवाली बने।

भावार्थ—कृत्या प्रतिकूल व्यक्ति को अग्नि की भाँति प्राप्त हो, अनुकूल व्यक्तियों के लिए

यह जल के समान हो जाए। इन कृत्याओं से बचे रहकर हम अपने शरीर रथ को उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला बनाएँ।

विशेष—सब प्रकार की हिंसा की भावनाओं को दूर करनेवाला पुरुष विश्वामित्र है। यही अगले दो सूक्तों का ऋषि है।

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**मधुला ओषधिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ग्यारह

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ १॥

१. इस सूक्त का देवता वनस्पति (वन=A ray of light) प्रकाश की किरणों की रक्षक वेदवाणी है। इसमें प्रभु हमारे लिए प्रकाश की किरणों को प्राप्त कराते है! यह दोषों का दहन करने के कारण ओषधि है। हे **ओषधे**=दोषदाहक शक्ति को धारण करनेवाली वेदवाणि! तू **ऋतजाते**=उस पूर्ण ऋतस्वरूप प्रभु से उत्पन्न हुई है, **ऋतावरि**=सत्यज्ञानवाली है, **मे मधुला**-मेरे लिए मधु को लानेवाली तू **मधु करः**-माधुर्य को करनेवाली है। २. हे वेदवाणि! **एका च मे दश च मे**-मेरी एक आत्मिक शक्ति तथा मेरी दसों इन्द्रियाँ **अपवक्तारः**=मुझसे सब बुराइयों को दूर करनेवाली हों। (Speaking away, warning off, preventing, averting)।

भावार्थ—वेदवाणी मेरे जीवन मे माधुर्य को उत्पन्न करे । मेरी आत्मशक्ति व दसों इन्द्रियाँ बुराई को मुझसे पृथक् करें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**मधुला ओषधिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

बाईस

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ २॥

१. **द्वे च मे विंशतिः च मे**-भौतिक जीवन में 'ऋत' (Regularity) तथा आध्यात्म-जीवन में सत्य और दसों प्राण व दसों इन्द्रियाँ मुझसे **अपवक्तारः**=सब दोषों को दूर करें, मेरे जीवन में दोषों को न आने दे। २. हे **ओषधे**-दोषदाहक शक्ति को धारण करनेवाली! **ऋतजातः**-पूर्ण सत्य प्रभु से उत्पन्न! **ऋतावरि** सत्यज्ञानवाली वेदवाणि! तू **मधुला**=माधुर्य को लानेवाली है, **मे मधु करः**=मेरे जीवन को मधुर बना।

भावार्थ—वेदवाणी से मेरा जीवन मधुर बने। ऋत और सत्य तथा दसों इन्द्रियाँ व दसों प्राण मुझसे बुराई को दूर रक्खें।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**मधुला ओषधिः** ॥ छन्दः—**३ अनुष्टुप्; ४ पुरस्ताद्बृहती; ५, ७-९ भुरिगनुष्टुप्; ६, १० अनुष्टुप्** ॥

तेतीस से एकसौ दस तक

तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ३॥

मे-मेरे **तिस्रः च** तीन तथा **मे त्रिंशत् च**-मेरे तीस अर्थात् शरीरस्थ मेरे तेतीस देव **अपवक्तारः**=सब दोषों को रोकनेवाले हों—सब दोषों को मुझसे दूरे करनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।

चतस्त्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ४॥
मेरे जीवन के चवालीस वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ५॥
मेरे जीनव के पचपन वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
षट् च मे षष्टिश्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ६॥
मेरे जीवन के छियासठ वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ७॥
मेरे जीवन के सतत्तर वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
अष्ट च मेऽ शीतिश्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ८॥
मेरे जीवन के अट्ठासी वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
नव च मे नवतिश्च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ९॥
मेरे जीवन के निन्यानवे वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।
दश च मे शतं च मेऽ पवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ १०॥
मेरे जीवन के एक सौ दस वर्ष मुझसे दोषों को पृथक् रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जीवन में सदा ही दोषों के आजाने की सम्भावना बनी रहती है। मैं सदा वेदवाणी को अपनाते हुए दोषों को दूर रखने के लिए यत्नशील रहूँ।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**॥ देवता—**मधुला ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अपक्षय से दूर

शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः॥ ११॥

१. **मे शतम् च**=मेरे जीवन के सौ वर्ष **च**=तथा **सहस्रम्**=हज़ारों वर्ष भी **अपवक्तारः**=बुराइयों व अपयश को मुझसे दूर रखनेवाले हों। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—यहाँ सहस्र के साथ 'मे' जोड़ना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हज़ारों वर्ष तक जीना सामान्यतया सम्भव नहीं, परन्तु हज़ारों वर्ष तक भी मैं अपयश से बचा रहूँ। मेरी अपकीर्ति न हो।

विशेष—जीवन को मधुर बनाता हुआ यह सबके प्रति मधुर वाणी बोलता हुआ सबका मित्र बनता है, अतः विश्वामित्र कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**एकवृषः** ॥ छन्दः—१,४-५ **द्विपदासाम्न्युष्णिक;**
२-३ द्विपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्॥

एक से पाँच तक

यद्येकवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ १॥
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ २॥
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ३॥
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ४॥
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ५॥

१. **यदि** यदि तू **एकवृषः**-एक इन्द्रिय को शक्तिशाली बनानेवाला **असि**-है, तो **सृज** अभी और शक्ति उत्पन्न कर। केवल एक इन्द्रिय को शक्तिशाली बना लेने पर **अरसः असि** तू नीरस जीवनवाला ही है। एक इन्द्रिय के सशक्त हो जाने से जीवन रसमय नहीं बन जाता। २. इसीप्रकार **यदि द्विवृषः असि**-यदि तू दो इन्द्रियों को सशक्त बनानेवाला है, तो भी नीरस जीवनवाला ही है, अतः और अधिक शक्ति उत्पन्न कर। ३. **यदि त्रिवृषः असि**-यदि तू तीन इन्द्रियों को भी शक्तिशाली बना पाया है, तो भी और अधिक शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि अभी तेरा जीवन ठीक से सरस नहीं हो पाया है। ४. **यदि चतुर्वृषः असि**-जिह्वा, घ्राणेन्द्रिय, आँख व श्रोत्र—इन चारों को भी तूने शक्तिशाली बनाया है, तो भी और अधिक शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि अभी तू अ रस ही है। ५. अब **यदि पञ्चवृषः असि** यदि तू पाँच ज्ञानेन्द्रियों को भी शक्तिशाली बनानेवाला है, तो भी अभी और शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि अभी तू अ रस ही है।

भावार्थ—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के सशक्त होने पर भी कर्मेन्द्रियों की शक्ति के अभाव में जीवन सरस नहीं बन पाता।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**एकवृषः** ॥ छन्दः—६ **द्विपदाऽऽसुर्यनुष्टुप;**
७-१० द्विपदासाम्न्युष्णिक्॥

छह से दस तक

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ६॥
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ७॥
यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ८॥
यदि नववृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ ९॥
यदि दशवृषोऽसि सृजारसो॑ऽसि॥ १०॥

१. यदि **षड्वृषः असि** यदि तूने पाँचों ज्ञानन्द्रियों के साथ एक छठी कर्मेन्दिय को भी सशक्त बनाना है, तो **सृज**=अभी और अधिक शक्ति उत्पन्न कर। इन छह के सशक्त हो जाने पर भी तू **अरसः असि**-अरस ही है, तेरा जीवन रसमय नहीं बन पाया है। २. यदि **सप्तवृषः असि**-यदि तू एक और कर्मेन्दिय को सशक्त बनाकर सात को सशक्त बना पाया है, तो भी तू और अधिक शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि अभी जीवन अरस ही है। ३. **यदि अष्टवृषः असि**-यदि तूने आठ इन्द्रियों को सशक्त बनाया है तो अभी और शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि

अभी तू सरस नहीं बना। ४. यदि **नववृषः असि**=यदि नौ इन्द्रियों को भी शक्तिशाली बनाया है तो भी तू अरस ही है, अभी और शक्ति उत्पन्न कर। ५. **यदि दशवृषः असि**–दसों इन्द्रियों को भी तूने शक्तिशाली बनाया है, तो भी और अधिक शक्ति उत्पन्न कर, क्योंकि अभी तू जीवन को सरस नहीं बना पाया है।

भावार्थ—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों व पाँचों कर्मेन्द्रियों के सशक्त हो जाने पर भी जीवन में सरसता नहीं आती। अभी मन को भी सशक्त बनाना है।

ऋषिः—**विश्वामित्रः** ॥ देवता—**एकवृष ओषधिः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽसुरीगायत्री** ॥

अपोदकः

यद्येकादुशोऽ सिं सोऽपोदको ऽसि॥ ११ ॥

१. **यदि एकदशः असि**=यदि तू ग्यारहवें मनवाला है, अर्थात् मन को तूने वश में किया है तो तू **अपोदकः असि**=(अपनद्धम् उदकं येन) अपोदक है—रेतःकणरूप जलों का शरीर में ही बाँधनेवाला है और वस्तुतः इन रेतःकणरूप जलों (आपः रेतो भूत्वा०) को शरीर में बाँधने पर ही जीवन रसमय बनता है। मन को वशीभूत कर लेने पर सब इन्द्रियाँ तो वशीभूत हो ही जाती हैं, ये इन्द्रियाँ विषयों की ओर न जाकर शक्तिशाली बनती हैं।

भावार्थ—मन को वशीभूत करने पर सब इन्द्रियाँ भी सशक्त बनती हैं। वैषयिक वृत्ति न होने पर शरीर में शक्ति की ऊर्ध्व गति होती है और जीवन आनन्दमय बनता है।

विशेष—यह अपोदक ही जीवन को नीरोग व निर्मल बनाकर 'मयोभू' बनता है—कल्याण को उत्पन्न करनेवाला। यही अगले तीन सूक्तों का ऋषि है।

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अकूपारः सलिलः मातरिश्वा

ते ऽवदन्प्रथुमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य॥ १ ॥

१. जिस समय विषयों में क्रीड़ा करता हुआ पुरुष ब्रह्म को भूल जाता है, तब यह भूल जाना ब्रह्मविषयक किल्बिष वा 'ब्रह्मकिल्बिष' कहलाता है। इस **ब्रह्मकिल्बिषे**=ब्रह्मविषयक पाप के होने पर **ते**=वे **प्रथमाः**–देवताओं में प्रथम स्थान रखनेवाले **अकूपारः**=(अकुत्सितपारः, दूरपारः, महागतिः) आदित्य **सलिलः**=जल तथा **मातरिश्वा**=वायु **अवदन्**=उस ब्रह्म का उपदेश करते हैं। इन्हें देखकर उस विषय-प्रवण मनुष्य को भी प्रभु का स्मरण हो आता है। सूर्य, जल और वायु उसे प्रभु की महिमा को कहते प्रतीत होते हैं। २. प्रभु के तीव्र तप से ऋत और सत्य भी उत्पन्न हुए। **ऋतस्य प्रथमजाः**=इस ऋत के मुख्य प्रादुर्भावरूप **उग्रं तपः**=अत्यन्त तेजस्वी, दीप्त, सूर्य **मयोभूः**=कल्याण देनेवाली वायु तथा **देवीः आपः**=दिव्य गुणवाले जल—ये सब **वीडुहराः**=बड़े तीव्र तेजवाले होते हैं। इनमें उस-उस तेज को स्थापित करनेवाले वे प्रभु ही तो हैं। इन सबमें उस प्रभु की ही तो महिमा दीखती है।

भावार्थ—सूर्य, जल व वायु प्रभु से उत्पादित ऋत के प्रथम प्रादुर्भाव हैं। इन सबमें प्रभु की महिमा दिखती है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हस्तगृह्या निनाय

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय॥ २॥

१. जीव यद्यपि प्रभु को भूल जाता है तो भी प्रभु उसपर **अहृणीयमानः**=क्रोध नहीं करते (हृणीयते—to be Angry)। प्रभु **राजा**-शासक हैं, परन्तु **सोमः** अत्यन्त सौम्य हैं, शान्त हैं। **प्रथमः** वे अधिक से अधिक विस्तारवाले (सर्वव्यापक) हैं। प्रभु इस व्यक्ति के लिए **ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छत्**-वेदवाणीरूप पत्नी को फिर से प्राप्त कराते हैं। २. वे प्रभु **वरुणः** सब बुराइयों का निवारण करनेवाले, **मित्रः**-मृत्यु व पाप से बचानेवाले हैं। वे प्रभु रक्षा के लिए **अन्वर्तिता आसीत्**-हमारे पीछे-पीछे आनेवाले हैं। माता छोटे बच्चे के साथ-साथ चलती है, ताकि गिरने लगे तो वह उसे बचा ले। इसीप्रकार ये वरुण व मित्र प्रभु हमारे साथ साथ चल रहे हैं। वे **होता**-सब साधनों के देनेवाले **अग्निः**-अग्रणी प्रभु **हस्तगृह्या**=हाथ से पकड़कर **निनाय** मार्ग पर ले-चलते हैं। माता जिस प्रकार बालक की अंगुली पकड़कर चलाती है, उसी प्रकार प्रभु इसे आश्रय देकर आगे ले-चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु शासक होते हुए भी क्रोध नहीं करते। वे प्रेरणा व आश्रय देकर हमें आगे ले-चलते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वाध्याय से कष्ट-निवारण

हस्तेनैव ग्राह्य ऽआधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत्।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य॥ ३॥

१. जिस समय एक आराधक इस वेदवाणी को यह **ब्रह्मजाया**-ब्रह्म का प्रकाश (प्रादुर्भाव) करनेवाली है, **इति चेत् अवोचत्**-इसप्रकार कहता है तब **अस्याः हस्तेन एव**-इस ब्रह्मजाया के हाथ से ही—आश्रय से ही **आधिः**-सब दुःख **ग्राह्य**-वश में करने योग्य होते हैं। ब्रह्मजाया का हाथ पकड़ते ही सब कष्ट दूर हो जाते है। २. **एषा**-यह वेदवाणी **दूताया प्रहेया**-दूत के लिए भेजने योग्य होती हुई **न तस्थे**-स्थित नहीं होती, अर्थात् इसे स्वयं न पढ़कर किसी और से इसका पाठ कराते रहने से पुण्य प्राप्त नहीं होता। **क्षत्रियस्य राष्ट्रं तथा गुपितम्**-एक क्षत्रिय राष्ट्र भी तो इसीप्रकार रक्षित होता है। दूसरों को शासन सौंपकर, स्वयं भोग विलास में पड़े रहनेवाला राजा कभी राष्ट्र को सुरक्षित नहीं कर पाता।

भावार्थ—स्वाध्याय मनुष्य को स्वयं करना है। यह स्वाध्याय उसके सब कष्टों को दूर करेगा।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तारका-विकेशी

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान्॥ ४॥

याम्=जिस वेदवाणी को **आहुः**=कहते है कि **एषा तारका**-(तारका ज्योतिषि इति इत्वाभाव) यह तारनेवाली है, **विकेशी इति**-यह निश्चत से विशिष्ट प्रकाश की किरणोंवाली है, **दुच्छुनाम्**-दुःखों व दुर्गति के **ग्रामम्**=समूह को **अवपद्यमानाम्**-हमसे दूर करनेवाली है। **सा ब्रह्मजाया**-वह प्रभु

से प्रादुर्भूत हुई वेदवाणी **राष्ट्रम्**=राष्ट्र को **विदुनोति**=सन्ताप-शून्य करती है। २. यह उस राष्ट्र को सन्ताप-शून्य करती है **यत्र**=जहाँ कि **उल्कुषीमान्**=(उल्कुषी-fire) मशाल को हाथ में लिये हुए **शशः**=प्लुतगतिवाला—खूब क्रियाशील पुरुष **प्रापादि**=प्रकृष्ट गतिवाला होता है। यह ज्ञान के प्रकाश को सर्वत्र फैलाता हुआ लोगों को उत्साहित करता है और इसप्रकार राष्ट्र को जागरित करनेवाला होता है।

भावार्थ—वेदवाणी हमें तारनेवाली है, विशिष्ट प्रकार की रश्मियों को प्राप्त करानेवाली है। दुःखों को दूर करनेवाली है। यह देववाणी उस राष्ट्र को सन्ताप शून्य करती है, जहाँ उत्साही पुरुष इसके सन्देश को राष्ट्र में सर्वत्र सुनाते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मचर्य व गृहस्थ

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः॥ ५॥

१. **ब्रह्मचारी**=ज्ञान में विचरण करनेवाला यह ब्रह्मचारी **विषः**=(विष् व्याप्तौ) व्यापक विज्ञानों को **वेविषत्**=व्याप्त करता हुआ **चरति**=गति करता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए **सः**=वह **देवानाम्**=देवों का **एकं अङ्गं भवति**=एक अङ्ग हो जाता है। देवों का अङ्ग बन जाना, अर्थात् उनके प्रति अपने को गौण कर देता है। यह माता, पिता व आचार्य आदि देवों के कहने के अनुसार चलता है। उनकी आज्ञा में चलता हुआ उत्कृष्ट ज्ञानी बनता हैं। २. **तेन**=उस—देवों का अङ्ग बनने से यह **जायाम्**=ब्रह्मजाया को—वेदवाणी को **अन्वविन्दत्**=प्राप्त करता है। वेदवाणी को प्राप्त करने के कारण ही यह **बृहस्पतिः**=(बृहत्याः पतिः) बृहती वेदवाणी का पति बनता है। यह उस ब्रह्मजाया को प्राप्त करता है, जो **सोमेन नीताम्**=(स उमा) ब्रह्मविद्या से युक्त सौम्य स्वभाववाले आचार्य से प्राप्त कराई गई है। उसी प्रकार प्राप्त कराई गई है **न**=जैसेकि **देवाः**=देव **जुह्वम्**=यज्ञ चमस् को प्राप्त कराते हैं। देव जैसे यज्ञों की प्रेरणा देते हुए हाथों में चम्मच का ग्रहण कराते हैं उसी प्रकार सोम ब्रह्मजाया को प्राप्त कराके ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान-प्रवण करते हैं। ३. प्रस्तुत मन्त्र में प्रसंगवश ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम का सुन्दर संकेत हुआ है। ब्रह्मचारी माता आदि देवों की अधीनता में चलता हुआ ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान प्राप्त करके, बृहस्पति बनकर यह गृहस्थ बनता है। यहाँ यह वेद के स्वाध्याय के साथ यज्ञशील बनता है।

भावार्थ—हम ब्रह्मचर्याश्रम में खूब ज्ञान प्राप्त करें और गृहस्थ में यज्ञशील हों।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणी के निरादर का परिणाम

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्यो३मन्॥ ६॥

१. **एतस्याम्**=गतमन्त्र में वर्णित इस ब्रह्मजाया के विषय में **पूर्वे देवाः**=पालन व पूरण करनेवाले देववृत्ति के व्यक्ति **वा**=निश्चय से **अवदन्त**=ज्ञान देनेवाले होते हैं। शरीर में स्थित **सप्तऋषयः**=कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्—दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सात ऋषि **ये**=जोकि **तपसा निषेदुः**=तपस्या के साथ निषण्ण होते हैं, अर्थात् जो विषय-प्रवण नहीं होते, वे इस वेदवाणी के विषय में बात करते हैं। माता-पिता व ज्ञानी आचार्य देव हैं, हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ सप्तऋषि हैं। ये मिलकर ब्रह्मजाया=वेदवाणी के विषय में चर्चा करते हैं, अर्थात्

ब्रह्मचर्य में तो यह ज्ञानचर्चा होती ही है, गृहस्थ में भी यह वेदवाणी की चर्चा समाप्त नहीं हो जाती। २. **ब्राह्मणस्य**-उस ज्ञानी प्रभु की **अपनीता**-दूर की हुई यह **जाया**=पत्नीरूप वेदवाणी **भीमा**=भयंकर होती है। जिस घर में से इसका अपनयन (दूरीकरण) हो जाता है, तो वहाँ **परमे व्योमन्**-उस घर के व्यक्तियों के हृदय-आकाश में यह (परमव्योम-हृदय) **दुर्धां दधाति**-बुराइयों को स्थापित करती है। स्वाध्याय के अभाव में हृदय में अशुभ विचार ही उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—माता पिता व आचार्य आदि देव तथा हमारे शरीरस्थ आँख, कान, मुख आदि सप्तर्षि वेदवाणी का ही चर्वण करें। यह देववाणी ब्रह्मजाया है, जिस घर में इसका निरादर होता है, वहाँ लोगों के हृदयाकाश अशुभ व मलिन विचारों के धूम से आकुल हो जाते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तीन दुष्परिणाम

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान्॥ ७॥

१. **ये गर्भाः अवपद्यन्ते**-जो गर्भ गिराये जाते हैं, **यत् च**-और जो **जगत् अपलुप्यते**=संसार लूटा जाता है अथवा **ये वीराः** जो वीर **मिथः**-आपस में **तृह्यन्ते**-हिंसित किये जाते हैं, युद्धों में एक-दूसरे से काटे जाते हैं, **तान्**-उन्हें **ब्रह्मजाया**=वेदवाणी ही निरादृत होने पर **हिनस्ति**-नष्ट करती है। २. जब वेदवाणी का स्वाध्याय नहीं रहता तब लोगों के जीवन संयमी नहीं रहते। भोगविलास में पड़े ये गृहस्थी अधिक सन्तानों के पालन के भय से भीत हुए हुए गर्भ गिरने को ही श्रेयस्कर समझते हैं, चोरियाँ और डाके बढ़ जाते है तथा वीर लोग भी युद्धों में परस्पर लड़कर मारे जाते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी के स्वाध्याय के अभाव में लोगों की प्रवृत्ति गर्भों को गिराने, लूटमार करने व परस्पर लड़ने की हो जाती है। यही तो अधःपतन है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदवाणी का रक्षक 'ब्रह्मा'

उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा॥ ८॥

१. **उत**-चाहे **स्त्रियाः** (स्त्यै शब्दे) इस शब्दात्मक वेदवाणीरूप ब्रह्मजाया के **यत्**-जो **पूर्वे** पहले **दश**-दस भी **अब्राह्मणाः**-अज्ञानी **पतयः**-रक्षक हों, **चेत्**-यदि **ब्रह्मा**-ज्ञानी **हस्तम् अग्रहीत्**-इस वेदवाणी के हाथ को ग्रहण करता है तो **सः एव**-वही **एकधा**-मुख्यरूप से **पतिः**=इसका रक्षक है। २. वेदवाणी के दस भी रक्षक यदि वे ज्ञानी नहीं है, तो इसका रक्षण इसप्रकार से नहीं कर सकते, जैसेकि एक ज्ञानी इसकी रक्षा करता है। वे अज्ञानी प्रथम तो इसका अध्ययन न करके इसपर पत्र-पुष्प ही चढ़ाते रहेंगे। पढ़ेंगे भी तो ऊटपटाँग अर्थ कर बैठेंगे, अतः वेदवाणी का रक्षक तो वस्तुतः ज्ञानी ही है। अल्पश्रुत (अब्राह्मण)से तो यह वेदवाणी डरती ही है। **'बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।'**

भावार्थ—वेदवाणी का रक्षण यही है कि हम ज्ञानी बनकर समझदारी से इसका अध्ययन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मण का सर्वमहान् कर्त्तव्य

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः।
तत्सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः॥ ९॥

१. वेदवाणी का **पतिः**=रक्षक **ब्राह्मणः एव**=ब्राह्मण ही है—वही व्यक्ति जिसका मुख्य कार्य वेदाध्ययन ही है, **न राजन्यः**=न तो प्रजा के रञ्जन में प्रवृत्त क्षत्रिय, **न वैश्यः**=न धन धान्य की प्राप्ति के लिए देश-देशान्तर में प्रवेश करनेवाला वैश्य। क्षत्रिय या वैश्य के पास कार्यान्तर व्यापृति के कारण उतना अवकाश नहीं कि वेद का ही रक्षण करते रहें। ब्राह्मण को और कोई कार्य नहीं, अतः वह इस रक्षण कार्य को ही करे। ब्रह्म—वेद को अपनाकर ही तो वह ब्राह्मण बनेगा। २. **सूर्यः**=सूर्यसम ज्योति ब्रह्म (प्रभु) **तत्**-ऊपर कही गई बात को **पञ्चभ्यः मानवेभ्यः**-पाँच भागों में बटे हुए (बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र—'निषाद') मनुष्यों के लिए **प्रब्रुवन् एति**=कहते हुए गति करते हैं—सर्वत्र व्याप्त हैं। ३. यहाँ सूर्य का अर्थ सूर्य ही लें तो अर्थ इसप्रकार होगा कि सूर्य पाँचों मनुष्यों के लिए उस बात को कहता हुआ गति करता है, अर्थात् यह बात अत्यन्त स्पष्ट है 'As clear as day light.'

भावार्थ—क्षत्रिय राजकार्य में व्यापृत होने से, वैश्य व्यापार में लगे होने से वेदवाणी का रक्षण उस प्रकार नहीं कर सकता जैसाकि एक ब्राह्मण। ब्राह्मण को तो इस ब्रह्म (वेद) को ही जीवन में सुरक्षित करने के लिए यत्नशील होना चाहिए।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देव, मनुष्य, राजा

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः॥ १०॥

१. गतमन्त्र के अनुसार **देवाः**-देववृत्ति के वे ब्राह्मण, जो ब्रह्मजाया के रक्षक थे, वे **पुनः**=फिर गृहस्थ की समाप्ति पर **वै**=निश्चय से **अददुः**=औरों के लिए इसका ज्ञान देनेवाले होते हैं। **उत मनुष्याः**=और ये विचारशील लोग **पुनः अददुः**-फिर इस वेदवाणी को देते हैं। वानप्रस्थ बनकर औरों के लिए इसे प्राप्त कराते हैं। २. **राजानः**=अपने जीवन को बड़ा व्यवस्थित (Well- regulated) करते हुए **सत्यं गृह्णानाः**=सत्य का स्वीकार करते हुए **पुनः**-फिर गृहस्थ की समाप्ति पर **ब्रह्मजायां ददुः**=इस ब्रह्मजाया को—प्रभु से प्रादुर्भूत की गई वेदवाणी को लोगों के लिए देते हैं।

भावार्थ—देव, मनुष्य व राजा बनकर—देववृत्ति के बनकर, विचारशील व व्यवस्थित जीवनवाले बनकर हम वानप्रस्थ बनें और इस वेदज्ञान को औरों के लिए देनेवाले हों।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आदर्श संन्यासी

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते॥ ११॥

१. वानप्रस्थ में **ब्रह्मजायाम्**=प्रभु से प्रादुर्भूत की गई वेदवाणी को **पुनः दाय**-फिर से औरों के लिए देकर तथा **देवैः**=दिव्य गुणों के धारण से **निकिल्बिषं कृत्वा**=अपने जीवन को पाप-रहित करके **पृथिव्याः**=इस पृथिवीरूपी शरीर के **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति का **भक्त्वा**=सेवन

करके **उरुगायम्** खूब ही गायन के योग्य प्रभु का **उपासते**-उपासन करते हैं। २. आदर्श संन्यासी का कर्त्तव्य है कि वह (क) अपने जीवन को दिव्य, पापशून्य बनाये, (ख) शरीर को स्वस्थ व सबल रक्खे (ग) शक्ति की स्थिरता के लिए प्रभु का उपासन करे।

भावार्थ—हम देव बनें, पापों से दूर रहें, शरीर को स्वस्थ व सबल बनाएँ, प्रभु का उपासन करें। यही सच्चा संन्यास है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदत्याग व पाप-प्रसार

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १२॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन्वेश्मनि जायते।
यस्मिंन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १३॥

१. **यस्मिन् राष्ट्रे**-जिस राष्ट्र में **अचित्या**=नासमझी के कारण **ब्रह्मजाया**-प्रभु से प्रादुर्भूत की गई (ब्रह्मणः जायते) यह वेदवाणी **निरुध्यते**=रोकी जाती है, अर्थात् जहाँ वेदज्ञान का प्रचार नहीं होता, वहाँ **अस्य**-इस ब्रह्मजाया का निरोध करनेवाले पुरुष की **जाया**-पत्नी जो **शतवाही**-घर के सैकड़ों कार्यों को करनेवाली व **कल्याणी**-मङ्गल-साधिका होनी चाहिए थी, वह **न तल्पम् आशये**=अपने बिछौने पर नहीं सोती, अर्थात् वह सती न रहकर स्वैरिणी बन जाती है, तब शतवाहीत्व और कल्याणीत्व का तो प्रसङ्ग ही नहीं रहता। २. इसीप्रकार जिस घर में वेदाध्ययन की परिपाटी नहीं रहती **तस्मिन् वेश्मनि**=उस घर में **विकर्णः**-विशिष्ट श्रोत्रशक्तिवाला—शास्त्रों का खूब ही श्रवण करनेवाला **पृथुशिराः**-विशाल मस्तिष्कवाला सन्तान **न जायते**=उत्पन्न नहीं होता। माता-पिता जब अध्ययन ही नहीं करेंगे तब सन्तान ज्ञान की रुचिवाले कैसे होंगे?

भावार्थ—जिन घरों में वेदाध्ययन की परिपाटी नहीं रहती, वहाँ स्त्रियों का आचरण ठीक नहीं रहता और सन्तान पठन की रुचिवाले नहीं होते, निर्बल-मस्तिष्क सन्तान उत्पन्न होते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदत्याग व मूर्ख अनादृत राजा

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः।
यस्मिंन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १४॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते।
यस्मिंन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १५॥

१. **यस्मिन् राष्ट्रे**=जिस राष्ट्र में **अचित्या**=नासमझी से **ब्रह्मजाया**=प्रभु से प्रादुर्भूत की गई यह वेदवाणी **निरुध्यते**-निरुद्ध की जाती है, अर्थात् जहाँ ज्ञान के प्रसार पर बल नहीं दिया जाता, वहाँ **अस्य**=इस राष्ट्र-रथ का **क्षत्ता**=सारथि **निष्कग्रीवः**=सुवर्णवत् दीप्त ज्ञान के कण्ठहारवाला **सूनानाम्**-ज्ञान-रश्मियों के (सूना-A ray of light) **अग्रतः न ऐति**=आगे नहीं चलता, अर्थात् ज्ञान का प्रसार न होने पर राष्ट्र का सारथि भी ज्ञानी नहीं रहता और मूर्ख राजा राष्ट्र-रथ को लक्ष्य से दूर ले जाता है। २. इसीप्रकार जिस राष्ट्र में नासमझी से वेदवाणी के प्रसार का निरोध होता है, **अस्य**=इस राष्ट्र का **श्वेतः** श्वेत, अर्थात् शुद्ध आचरणवाला **कृष्णकर्णः**-आकृष्ट किये हैं कर्ण जिसने, अर्थात् जिसकी आज्ञा को सब प्रजा सुनती है, ऐसा **धुरियुक्तः**-राष्ट्र शकट के

जुए में जुता हुआ राजा **न महीयते**=उत्तम महिमा को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इस राष्ट्र में राजा भी मलिन कर्मोंवाला तथा प्रजा से उपेक्षित व अनादृत होता है।

भावार्थ—ज्ञान के प्रचार के अभाव में राष्ट्र में राजा भी ज्ञानी नहीं रहता और अन्ततः मलिन कर्मोंवाला व प्रजा से उपेक्षित व अनादृत हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मद्यशाला नकि पुष्करिणी

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम्।
यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १६॥
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति ये ऽस्या दोहमुपासते।
यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या॥ १७॥

१. **यस्मिन् राष्ट्रे**=जिस राष्ट्र में **अचित्या**=नासमझी के कारण **ब्रह्मजाया निरुध्यते**=प्रभु से प्रादुर्भूत की गई यह वेदवाणी रोकी जाती है, **अस्य क्षेत्रे**=इस राष्ट्र के खेतों में **पुष्करिणी**=कमलोंवाले तलाब **न जायते**=नहीं होते तथा **आण्डीकं बिसम्**=बीजों से युक्त भिस व कमलकन्द नहीं होते, अर्थात् इस राष्ट्र में कमल आदि का उत्पादन न होकर तम्बाकू आदि की खेती होने लगती है। २. इसीप्रकार जिस राष्ट्र में वेदज्ञान के प्रसार की व्यवस्था नहीं होती, उस राष्ट्र के राजा के लिए **पृश्निं न विदुहन्ति**=इस वेदवाणी का—ज्ञान-रश्मियों के सम्पर्कवाले ग्रन्थों का दोहन वे लोग नहीं करते **ये**=जोकि **अस्या**=इसके **दोहम्**=दुग्ध का **उपासते**=उपासन करते हैं, अर्थात् ज्ञानी पुरुष इस राजा को ज्ञान देने के लिए यत्नशील नहीं होते। राजा ज्ञान की रुचिवाला न होने से ज्ञान का पात्र ही नहीं रहता।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में ज्ञान का प्रसार नहीं होगा, वहाँ लोग पुष्करिणियों के निर्माण के स्थान में मद्यशालाओं का निर्माण करेंगे, कमलों का स्थान तम्बाकू ले-लेगा। राजा ज्ञानियों से घिरा हुआ होने के स्थान में खुशमदियों में घिरा हुआ होगा।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मजाया** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कुत्ता न कि धेनु

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम्।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया॥ १८॥

१. **यत्र**=जिस राष्ट्र में **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण भी **विजानिः**=(विगता जाया—ब्रह्मजाया यस्य) वेदवाणिरूपी ब्रह्मजाया से रहित होकर **रात्रिं पापया वसति**-रात्रि में कुकर्म से निवास करता है, अर्थात् असंयत जीवनवाला होकर पाप में चलता जाता है। **अस्य**=इस राष्ट्र की **धेनुः**=गाय **कल्याणी न**-लोककल्याण करनेवाली नहीं होती और **न**=नहीं **अनड्वान्**=बैल **धुरं सहते**=गाड़ी में जुए को धारण करनेवाला होता है, अर्थात् इस राष्ट्र में गोपालन ठीक से न होने के कारण गौ और बैल की नस्ल क्षीण हो जाती है। घरों में गौओं का स्थान कुत्तों को मिल जाता है। लोग भी कुत्तों की भाँति ही लड़ने की प्रवृतिवाले बन जाते हैं।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में ब्राह्मण ज्ञानरुचि न रहकर असंयत आचरणवाले हो जाते हैं, वहाँ लोगों में गोपालन की रुचि न रहकर कुत्तों के पालन की प्रवृत्ति पनप उठती है।

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मण की अनाद्या गौ

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्॥ १॥

१. प्रभुकृपा से राष्ट्र में ज्ञानी ब्राह्मणों की उत्पति होती है। इनके द्वारा राष्ट्र में ज्ञान का प्रसार होता है। यदि कोई राजा शक्ति के गर्व में इनकी वाणी पर प्रतिबन्ध लगा देता है, तो वह राजा राष्ट्र का अकल्याण ही करता है। **ते देवाः** वे सब देव—सब प्राकृतिक शक्तियाँ, हे **नृपते** राजन्! **एताम्** इस ब्राह्मणवाणी को **तुभ्यम्** तेरे लिए **अददुः** देते हैं, **न अत्तवे** खा जाने के लिए नहीं। राष्ट्र में उत्पन्न हुए हुए इन ब्राह्मणों की वाणी पर तुम प्रतिबन्ध लगा दो, यह ठीक नहीं। २. हे **राजन्य**-प्रकृति का रञ्जन करनेवाले राजन्! **ब्राह्मणस्य**=ब्राह्मण की **गाम्** वाणी को तू **मा जिघत्सः** खा जाने की कामना मत कर, यह **अनाद्याम्**-खा जाने योग्य नहीं है। तुझे इन ज्ञान की वाणी को सुनना चाहिए और उसके अनुसार ही राष्ट्र के पालन की व्यवस्था करनी चाहिए।

भावार्थ—प्रभु व सब देव राष्ट्र में ज्ञानी ब्राह्मणों को जन्म देने का अनुग्रह करते हैं। एक अत्याचारी राजा इन ब्राह्मणों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाने की सोचता है। उसे इस वाणी को अनाद्या समझना चाहिए और उसपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अक्षद्रुग्ध राजन्य

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः॥ २॥

१. **अक्षद्रुग्धः** अपनी इन्द्रियों से ही जिघांसित—विषयासक्ति के कारण पाप की ओर ले जाया गया **राजन्यः**-क्षत्रिय राजा **पापः**-पापमय जीवनवाला होता है। **आत्मपराजित** वह अपने में ही पराजित हुआ हुआ होता है, उसकी इन्द्रियाँ तथा मन ही उसे हरा देते हैं, वह इनका दास बन जाता है। २. नासमझी के कारण यह राष्ट्र के ज्ञानी ब्राह्मणों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाने की सोचता है, जिससे वे उसके उच्छृङ्खल जीवन पर कोई टीका टिप्पणी न कर दें, परन्तु **सः** वह पापी राजा **ब्राह्मणस्य गाम्**-इस ज्ञानी ब्राह्मण की वाणी को यदि **अद्यात्**-खाये तो वह निश्चय से यह समझ ले कि **अद्य जीवानि** आज बेशक जी ले **न श्वः** कल न जी पाएगा, अर्थात् इसका शीघ्र ही विनाश हो जाएगा।

भावार्थ—जो विलासी राजा ज्ञानी ब्राह्मणों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाता है, इस वाणी का ध्वंस करके वह देर तक जीवित नहीं रहता।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अघविषा पृदाकूः इव

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा। सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या॥ ३॥

१. हे **राजन्य**-क्षत्रिय! **सा ब्राह्मणस्य गौः**-वह ब्राह्मण की वाणी **अनाद्या** खाने योग्य नहीं है, इसपर प्रतिबन्ध लगाना ठीक नहीं है। **एषा**-यह ब्राह्मण की वाणी **चर्मणा आविष्टिता** चमड़े से ढकी हुई **तृष्टा** प्यास से व्याकुल **पृदाकूः इव** सर्पिणी के सामन **अघविषा**-भयंकर (कष्टप्रद)

विष से भरी होती है, इसे खानेवाला तो मरेगा ही।

भावार्थ—ब्राहाण की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाना विषैली सर्पिणी का विष खने के समान है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'क्षत्र व वर्चस्' का विनाश

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चो॒ऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य॥ ४॥

१. **यः**=जो घमण्डी राजा **ब्राह्मणम्**=ब्रह्मज्ञानी को **अन्नं मन्यते**=(अद्यते) खा जाने योग्य मानता है और उसके ज्ञान-प्रसार-कार्य पर प्रतिबन्ध लगा देता है, **सः**=वह राजा इस कार्य को करता हुआ मानो **तैमातस्य विषस्य पिबति**=फनियर नाग के विष को ही पीता है। २. यह ब्रह्मप्रतिबन्धक राजा **वै**=निश्चय से **क्षत्रम्**=बल को **निः नयति**=बाहर फेंक देता है, अर्थात् इसका बल नष्ट हो जाता है। यह **वर्चः हन्ति**=अपनी प्राणशक्ति को नष्ट कर लेता है, परिणामतः रुग्ण शरीरवाला हो जाता है और **आरब्धः**=चारों (आ+रभ्) ओर से लगी हुई **अग्निः इव**=अग्नि के समान **सर्वं विदुनोति**=अपना सब-कुछ जला बैठता है, राष्ट्र को ही विनष्ट कर लेता है।

भावार्थ—ज्ञानप्रसार पर प्रतिबन्ध लगाना भयंकर विष को पीने के समान है। इससे राष्ट्र की शत्रुप्रतिरोधक शक्ति नष्ट हो जाती है, राष्ट्र के व्यक्तियों की प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है, सारा राष्ट्र भस्म-सा हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'धनकामः देवपीयुः' राजा

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम्॥ ५॥

१. **यः**=जो राजा **धनकामः**=केवल धन की कामनावाला हो जाता है और **देवपीयुः**=देवों को भी हिंसित करनेवाला होता है, वह **एनम्**=इस ब्राह्मण को **मृदुं मन्यमानः**=कोमल (निर्बल) मानता हुआ **हन्ति**=इसे विनष्ट करता है। यदि यह राजा **न चित्तात्**=नहीं समझता और अपने अत्याचार में लगा रहता है तो **इन्द्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **तस्य हृदये**=उसके हृदय में **अग्निं समिन्धे**=अग्नि को समिद्ध करते हैं—यह शोकाग्नि से सन्तप्त होता रहता है। २. **उभे नभसी**=दोनों द्यावापृथिवी **चरन्तं एनम्**=(अत्याचरन्तम्) अत्याचार करते हुए इस राजा को **द्विष्टः**=प्रीति नहीं करते, अर्थात् इसके राष्ट्र में आधिदैविक आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं—सूर्य अधिक तपने लगता है, पृथिवी प्रभूत अन्न उत्पन्न नहीं करती। ज्ञान के अभाव में लोगों की वृत्तियों के वैषयिक हो जाने से इन विपत्तियों का आना स्वाभाविक ही है। ऐसे राष्ट्रों में अतिवृष्टि आदि हुआ ही करती हैं।

भावार्थ—यदि राजा ब्राह्मण को मृदु मानकर उसपर अत्याचार करता है और उसके ज्ञान-प्रसार के कार्य पर प्रतिबन्ध लगता है तो अन्त में उसे शोकाग्नि में जलना पड़ता है। उसके राष्ट्र में आधिदैविक आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अग्नि, सोम, इन्द्र (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक)

न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ऽग्निः प्रियतनोरिव।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः॥ ६॥

१. राजा को राष्ट्र में **ब्राह्मणः न हिंसितव्यः**-ज्ञानी का हिंसन नहीं करना चाहिए। यह ज्ञानी तो **प्रियतनोः अग्निः इव**-प्रिय शरीर की अग्नि के समान है, अर्थात् शरीर में अग्नि न रहे तो जैसे वह मृत हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी के न रहने पर तो राष्ट्र शरीर मृत ही हो जाएगा। २. **सोमः**-शान्त प्रभु **ही** निश्चय से **अस्य दायादः**-इसका बन्धु है और **इन्द्रः** सर्वशक्तिमान् प्रभु **अस्य अभिशस्तिपाः**-इसका हिंसा व निन्दा से रक्षक है। यह ब्राह्मण तो सोम व इन्द्र ही होता है—शान्त व शक्तिमान्। अथवा 'सोम' चन्द्रमा तथा 'इन्द्र' सूर्य के समान व्यवस्थित जीवनवाला होने से यह राष्ट्र में शन्ति और शक्ति का विस्तार करनेवाला होता है।

भावार्थ—राजा को ज्ञानी ब्राह्मण पर ज्ञान-प्रसार के कार्यों में प्रतिबन्धरूप अत्याचार नहीं करना चाहिए। यह ज्ञानी तो राष्ट्र शरीर में अग्नि के समान जीवन का संरक्षक होता है। यह राष्ट्र में सोम और इन्द्र (चन्द्र-सूर्य) के समान शान्ति व शक्ति का विस्तारक होता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ज्ञान-प्रसार-केन्द्रों की समाप्ति से दुर्व्यवस्थाओं का बोलबाला

श॒तापा॑ष्ठां॒ नि गि॑रति॒ तां न श॑क्नोति नि॒ःखिद॑न्।
अन्नं॒ यो ब्र॒ह्मणां॑ म॒ल्वः स्वा॒द्व१॒॑द्मीति॒ मन्य॑ते॥ ७॥

१. **यः मल्वः**=जो मलिन इच्छाओंवाला राजा **ब्रह्मणां अन्नम्**=ज्ञानी ब्राह्मणों के अन्न को **स्वादु अद्मि इति मन्यते**-यह कितना स्वादिष्ट है 'इसे मैं खा जाऊँ' ऐसा सोचता है, अर्थात् जो ज्ञानी ब्राह्मणों के ज्ञान प्रसार के साधनभूत स्थानों को छीनना चाहता है, वह **शत+अपाष्ठाम्**-सैकड़ों अपाष्ठाओंवाली—बहुत दुर्भाग्यों से युक्त विपत्ति को ही **निगिरति**-खाता है—प्राप्त होता है और **तां निःखिदन्**-उस अपाष्ठा को नष्ट करने का यत्न करता हुआ भी **न शक्नोति**=उसे दूर करने में समर्थ नहीं होता।

भावार्थ—जो राजा ज्ञानी ब्राह्मणों के ज्ञान प्रसार केन्द्रों को ही खा जाना चाहता है, अर्थात् समाप्त कर देता है, वह राष्ट्र में बहुत दुर्गतियों व अव्यवस्थाओं का कारण बनता है और अन्य कितने भी यत्नों से वह इन दुर्गतियों को दूर नहीं कर पाता।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मा द्वारा देवपीयुओं का वेधन

जि॒ह्वा ज्या भव॑ति॒ कुल्म॑लं॒ वाङ् ना॑डी॒का दन्ता॒स्तप॑सा॒भिदि॑ग्धाः।
तेभि॑र्ब्र॒ह्मा वि॑ध्यति देवपी॒यून्हृ॑द्ब॒लैर्ध॑नु॒र्भिर्दे॒वजू॑तैः॥ ८॥

१. ब्राह्मण की **जिह्वा**-जीभ **ज्या भवति** धनुष की डोरी होती है, **वाक्**-वाणी **कुल्मलम्** धनुष् का दण्ड हो जाती है और **तपसा अभिदिग्धाः**-तप व तेज से लिप्त **दन्ताः**-दाँत **नाडीकाः**-'नालीक' नामक बाण हो जाते हैं (न अलीक-न झूठे, अर्थात् शत्रु को अवश्य नष्ट करनेवाले)। २. **तेभिः** उनके द्वारा **ब्रह्मा**-यह ज्ञानी **देवपीयून्**=देवहिंसक राजाओं को **विध्यति**-बींधता है—नष्ट करता है, उन **धनुर्भिः**-धनुषों से बींधता है, जोकि **हृद्बलैः**-हृदय की शक्ति से युक्त हैं तथा **दैवजूतैः**=दिव्य शक्तियों से प्रेरित हैं।

भावार्थ—तपस्वी, ज्ञानी ब्राह्मण की वाणी शत्रुवेधक शर के समान होती है। हृदय की शक्ति से सम्पन्न, दिव्यभाव से प्रेरित यह शर देवहिंसक राजा को विद्ध करता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्राह्मण-वाणी+बाण

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्॥ ९॥

१. **ब्राह्मणाः**=ज्ञान का प्रसार करनेवाले ब्राह्मण **तीक्ष्णेषवः**=बड़े तीक्ष्ण बाणोंवाले होते हैं, वे **हेतिमन्तः**=घातक अस्त्रोंवाले—वज्रवाले होते हैं। ये लोग **यां शरव्याम्**=जिस बाणसमूह को—ज्ञान की वाणीरूप बाण को **अस्यन्ति**=छोड़ते हैं, **सा न मृषा**—वे झूठे नहीं होते। यह वाणीरूप बाण अवश्य शत्रु का विनाश करता है। २. ये ब्राह्मण **तपसा**=तप के द्वारा **मन्युना च**=और ज्ञानदीप्ति (मन अवबोधे) के द्वारा **अनुहाय**=पीछा करके **दूरात् उत**—दूर से ही **एनम्**=इस अत्याचारी राजा को **अवभिन्दन्ति**—विदीर्ण कर देते हैं।

भावार्थ—ब्राह्मणों का वणीरूप बाण शत्रुओं को शीर्ण कर डालता है। तप व ज्ञान से सम्पन्न ये ब्राह्मण प्रजाओं के शत्रुभूत राजा को दूर से ही विनष्ट कर देते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वैतहव्यों का पराभव

ये सहस्रमराजन्नासन्दशशता उत।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्॥ १०॥

१. **ये**=जो **वैतहव्याः**=दान-योग्य हव्यपदार्थों को स्वयं खा जानेवाले—प्रजा से प्राप्त 'कर' को प्रजाहित में विनियुक्त न करके अपनी मौज में व्यय करनेवाले राजा **सहस्रम्**=(सहस्-बल) बल-सम्पन्न सेना का **अराजन्**=शासन करते थे, **उत**=और स्वयं भी **दशशताः आसन्**-हज़ारों की संख्या में थे, अर्थात् बड़े परिवार या बन्धुवाले थे, **ते**=वे **ब्राह्मणस्य**=ब्राह्मण की **गां जग्ध्वा**=ज्ञान की वाणी को खाकर **पराभवन्**-पराभूत हो गये। २. ये वैतहव्य राजा कितने भी प्रबल हों यदि ये अपने बल के अभिमान में ज्ञानी ब्राह्मणों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाना चाहेंगे तो इनका पराभव ही होगा।

भावार्थ—बल के अभिमान में विलासी राजा ब्राह्मणों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाते हैं और परिणामतः विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

केसरप्राबन्धा वाणी

गौरेव तान्हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत्।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन्॥ ११॥

१. **गौः एव**-यह ब्राह्मण की ज्ञानरूप गौ ही **हन्यमाना**=मारी जाती हुई **तान् वैतहव्यान्**-उन कर-प्राप्त धनों को खा जानेवाले—अपने विलास में व्यय कर डालनेवाले राजाओं को **अवातिरत्**-मार डालती है। २. उन वैतहव्यों को यह वाणी नष्ट कर देती है, **ये**=जो **केसरप्रा-बन्धायाः**=(के+सर+प्र+अबन्धा) सुख-प्रसार के लिए बन्धनरहित, अर्थात् निश्चितरूप से सुख प्राप्त करानेवाली ज्ञानी ब्रह्मण की वाणी की **चरमाजाम्**=(चरमा अजा=गतिक्षेपणयोः) अन्तिम चेतावनी को भी **अपेचिरन्**=पचा डालते हैं—हज़म कर जाते हैं, अर्थात् उसे भी नहीं सुनते।

भावार्थ—जो प्रजा से दिये गये कर को विलास में व्यय करनेवाले राजा हैं और ज्ञानियों से दी गई चेतावनी की परवाह नहीं करते, वे अन्ततः विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मणी प्रजा के हिंसन का परिणाम

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्य॑धूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्॥ १२॥

१. **ताः जनताः**=वे लोग **एकशतम्**=एक सौ एक थे—सैकड़ों थे **याः भूमिः व्यधूनुत**=जिन्हें भूमि ने कम्पित कर दिया। **ब्राह्मणीम्**=ज्ञानी पुरुष के पीछे चलनेवाली **प्रजां हिंसित्वा**=प्रजा को नष्ट करके ये प्रजापीड़क राजा **असंभव्यं पराभवम्**-बिना सम्भावना के ही परास्त हो गये। २. जब राजा प्रजा पर अत्याचार करने लगता है तब प्रजा किसी ज्ञानी की शरण में जाती है और वस्तुतः उस ज्ञानी की ही हो जाती है। इस प्रजा पर राजा खूब अत्याचार करता है, परन्तु अन्त में न जाने कैसे, उस प्रभु की व्यवस्था से वह नष्ट हो जाता है। कल्पना भी नहीं होती कि यह विनष्ट हो जाएगा, परन्तु वह ऐसे नष्ट हो जाता है, जैसे भूकम्प से एक महल नष्ट हो जाता है। कितने ही ऐसे अत्याचारियों को पृथिवी ने अन्ततः कम्पित कर दिया।

भावार्थ—ब्राह्मणी प्रजा पर अत्याचार करके राजा कल्पनातीत ढंग से विनष्ट हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गरगीर्णः अस्थिभूयान्

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम्॥ १३॥

१. **देवपीयुः**-देवों—ज्ञानियों का हिंसन करनेवाला राजा **मर्त्येषु**-मनुष्यों में **गरगीर्णः चरति**-मानो विष पिये हुए घूमता है, अर्थात् उसकी अवस्था वही हो जाती है, जो उस पुरुष की, जिसने कि ग़लती से विष पी लिया हो। यह **अस्थिभूयान् भवति**-हड्डी-हड्डीवाला हो जाता है—अस्थि पंजर-सा रह जाता है। २. **यः**-जो **देवबन्धुम्**-प्रभु के मित्र **ब्राह्मणम्**=ज्ञानी पुरुष का **हिनस्ति**-हिंसन करता है, **सः**-वह राजा देवयानलोक को प्राप्त करने की बात तो दूर रही **पितृयाणं लोकं अपि न एति** पितृयाणलोक को भी प्राप्त नहीं करता। यदि यह प्रजा का रक्षण करता तभी तो पितृयाणलोक को प्राप्त करता। ब्राह्मणी प्रजा का हिंसन करने से इसके लिए इस लोक की प्राप्ति सम्भव कहाँ? यह तो विनष्ट ही होता है।

भावार्थ—जो राजा देवों का हिंसन करता है, वह विष पिये हुए के समान अस्थि पंजर सा रह जाता है, इसे उत्तम लोक की प्राप्ति नहीं होती।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अग्नि, सोम, इन्द्र'

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः॥ १४॥

१. **वेधसः**-ज्ञानी पुरुष **तथा** उस प्रकार से **तत्** उस बात को **विदुः**-जानते हैं कि **अग्निः**-वह अग्रणी प्रभु **वै** निश्चय से **नः**-हमारा **पदवायः**-पथ प्रदर्शक है (पदं आप्तव्यस्थानं वाययति गमयति) हमें लक्ष्य-स्थान की ओर ले जानेवाला है। २. **सोमः** सोमरूप प्रभु हमारा **दायादः** बन्धु **उच्यते** कहा जाता है। यह **इन्द्रः** शत्रु विद्रावक प्रभु ही **अभिशस्ता**-अत्याचारियों पर शस्त्र प्रहार करनेवाला व **हन्ता**-उन्हें विनष्ट करनेवाला है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष अग्निरूप प्रभु को अपना पथ प्रदर्शक जानते हैं, वे सोम प्रभु को अपना बन्धु समझते हैं और उन्हें यह विश्वास होता है कि 'इन्द्र' प्रभु अत्याचारियों का विनाश करते ही हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नृपते-गोपते

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः॥ १५॥

१. हे **नृपते**-मनुष्यों के पालक राजन्! **दिग्धा इषुः इव**-उपर्युक्त ब्राह्मण-वाणी विषबुझे तीर का काम करती है, अत्याचारी को विषबुझे तीर के समान समाप्त कर देती है। हे **गोपते**=ज्ञान की वाणियों के रक्षक राजन्! **पृदाकूः इव**=ब्राह्मण-वाणी सर्पिणी की भाँति है। यह अत्याचारी को डसकर समाप्त कर देती है। २. **सा**=वह **ब्राह्मणस्य घोरा इषुः**=ब्राह्मण की वाणी ही घोर इषु (बाण) है, **तया पीयतः विध्यति**=उसके द्वारा यह देवहिंसकों का विनाश कर देती है।

भावार्थ—राजा को 'नृपति व गोपति' बनना चाहिए। वह प्रजा का रक्षण करे, ब्राह्मणों के द्वारा प्रसृत ज्ञानवाणी का भी रक्षण करे, अन्यथा यह वाणी उसे इसप्रकार समाप्त कर देती है, जैसकि विषबुझा तीर या विषैली सर्पिणी।

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सृञ्जयों का वैतहव्य होने पर पतन

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्॥ १॥

१. **सृञ्जयाः**=आक्रान्ता (सृ) शत्रुओं को जीतनेवाले ये सृञ्जय **अतिमात्रम् अवर्धन्त**-खूब ही वृद्धि को प्राप्त हुए **न उत् इव**=केवल इतना ही नहीं कि वे वृद्धि को प्राप्त हुए, अपितु **दिवं अस्पृशन्**=उन्नत होते हुए उन्होनें तो द्युलोक को जा छुआ। '**अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नान् जयति**'। ये सृञ्जय जब **वैतहव्याः**-कर-प्राप्त धन को खानेवाले बने तब **भृगुम्**=ज्ञान-परिपक्व ब्राह्मण को **हिंसित्वा**-नष्ट करके, उसे ज्ञान प्रसार आदि कार्यों से रोककर **पराभवन्**=पराभूत हो गये।

भावार्थ—जब राजा सृञ्जय—आक्रान्ता शत्रुओं पर विजय पानेवाले होते हैं तब ये खूब ही बढ़ते है, उन्नति के शिखर पर पँहुचते है, परन्तु भोग-विलास में फँसते ही यह ज्ञानियों पर प्रतिबन्ध लगाना आरम्भ करते हैं। उन्हे हिंसित करके से स्वयं पराभूत हो जाते हैं—**समूलस्तु विनश्यति**।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती** ॥

'बृहत्सामा आङ्गिरस ब्राह्मण' के निरादर का परिणाम

ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन्ब्राह्मणं जनाः।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत्॥ २॥

१. **ये जनाः**=जो लोग **बृहत् सामानम्**=महान् प्रभु के उपासक **आङ्गिरसम्**-अंगारों के समान ज्ञानदीप्त **ब्राह्मणम्**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष को **आर्पयन्**=(ऋ हिंसायम्) हिंसित करते हैं, **तेषां**

तोकानि-उनके सन्तानों को **पेत्वः**-सबका पालक **अविः**-रक्षक प्रभु **उभयादम् आवयत्** अपने दोनों जबड़ों के बीच में चबा डालता है (वी खादने)। २. द्युलोक व पृथिवीलोक ही प्रभु के जबड़े हैं। ज्ञानी का हिंसन करनेवाले राजा लोग द्युलोक व पृथिवीलोक के कष्टों में पिस जाते हैं।

भावार्थ—राजा को प्रभु-भक्त व ज्ञान-दीप्त ब्राह्मणों का आदर करना चाहिए। उन्हें हिंसित करनेवाला राजा आधिदैविक आपत्तियों का शिकार हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मणों के निरादर से युद्धों में विनाश

ये ब्रा॒ह्म॒णं प्र॒त्यष्ठी॑व॒न्ये वा॑स्मिञ्छु॒ल्कमी॑षि॒रे।
अ॒स्नस्ते॒ मध्ये॑ कु॒ल्याया॒: केशा॒न्खाद॑न्त आसते॥ ३॥

१. **ये**-जो राजा लोग राज्यशक्ति के गर्व में **ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्**-ब्राह्मण के प्रति थूकते हैं, अर्थात् उसका निरादर करते हैं, **ये वा** अथवा जो **अस्मिन्** इसपर **शुल्कम्**-कर को **ईषिरे**-(ईष glean, collect) उगाहते हैं, **ते**-वे **अस्नः**-रुधिर की **कुल्यायाः मध्ये**-नदी के बीच में 'कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित्'—अपने अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए बनाई हुई कृत्रिम छोटी-छोटी नदियों के बीच में **केशान् खादन्तः**=एक दूसरे के बालों को खाते हुए—एक दूसरे को नोचते हुए **आसते**=स्थित होते हैं।

भावार्थ—ज्ञानियों का निरादर करनेवाले राजा परस्पर युद्धों में फँस जाते हैं और एक-दूसरे का नाश करने में लगे रहते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'वृषा वीरः' न जायते

ब्र॒ह्म॒ग॒वी प॒च्यमा॑ना याव॒त्साभि वि॒जङ्ग॑हे।
तेजो॑ रा॒ष्ट्रस्य॒ निर्ह॑न्ति॒ न वी॒रो जा॑यते॒ वृषा॑॥ ४॥

१. **यावत्**-जब तक **सा ब्रह्मगवी**-वह ब्राह्मण की गौ **पच्यमाना**=कष्टों की अग्नि में तपाई जाती हुई **अभिविजङ्गहे**=तड़पती रहती है, अर्थात् जब तक ब्राह्मण की वाणी का आदर नहीं होता तब तक यह निरादृत ब्रह्मगवी **राष्ट्रस्य तेजः निर्हन्ति**-राष्ट्र के तेज को नष्ट कर देती है। इस राष्ट्र में **वीरः वृषा न जायते**-वीर धार्मिक पुरुषों का प्रादुर्भाव (विकास) नहीं होता।

भावार्थ—ब्राह्मण की वाणी पर प्रतिबन्ध लगे रहने पर ज्ञान के प्रसार के अभाव में अधर्म फैलता है, राष्ट्र में तेजस्विता नहीं रहती और धार्मिक वीर पुरुषों का प्रादुर्भाव नहीं होता।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

एक महान् पाप

क्रू॒रम॑स्या आ॒शस॑नं तृ॒ष्टं पि॑शि॒तम॑स्यते।
क्षी॒रं यद॑स्याः पी॒यते॒ तद्वै पि॒तृषु॒ किल्बि॑षम्॥ ५॥

१. **अस्याः** इस ब्रह्मगवी का—ब्राह्मण की ज्ञान-प्रसार की साधनभूत वाणी का **आशसनम्**-हिंसन **क्रूरम्**-एक अत्यन्त क्रूर कर्म है, अर्थात् यह एक बड़ा अत्याचार है, जो **पिशितम् अस्यते**-चमड़े की भाँति इसकी उधेड़बुन की जाती है, वह **तृष्टम्**-तृष्णा—प्रबल प्यास की भाँति दुःख देनेवाली है। २. **यत्**-जो **अस्याः**-इस ब्रह्मगवी का **क्षीरम्**-उपदेशामृतरूप दुग्ध

पीयते-नष्ट किया जाता है, **तत्**-वह **वै**-निश्चय से **पितृषु किल्बिषम्**=इन राष्ट्ररक्षक पुरुषों में बड़ा भारी पाप होता है।

भावार्थ—ब्राह्मण की वाणी का हिंसन एक क्रूर कर्म है। इसकी उधेड़बुन करते रहना प्रबल प्यास के समान पीड़ित करनेवाला है। इस वाणी के उपदेशामृत का हिंसन तो इन शासकों का बड़ा भारी दोष है—पाप है ।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मण-निरादर व राष्ट्रीय दरिद्रता

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते॥ ६॥

१. **यः राजा**-जो राजा **मन्यमानः**=अपने बल का अभिमान करता हुआ **उग्रः**-क्रूर स्वभाव का बनता है और **ब्राह्मणम्**-ज्ञान का प्रसार करनेवाले ज्ञानी पुरुष को **जिघत्सति**-खा जाना चाहता है और परिणामतः **यत्र**=जिस राष्ट्र में **ब्राह्मणः जीयते**=यह ब्राह्मण तंग किया जाता है (to be oppressed), अत्याचारित होता है **तत् राष्ट्रम्**-वह राष्ट्र **परासिच्यते**=शत्रु द्वारा निर्धन कर दिया जाता है—रिक्त कोशवाला हो जाता है।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में राजा शक्ति के अभिमान में ब्राह्मणों पर क्रूरवृतिवाला होता है, वह राष्ट्र शीघ्र दरिद्र हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**विराडुपरिष्टाद्बृहती** ॥

अद्भुत गौ

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः।
द्व्या॑स्या॒ द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य॥ ७॥

१. यह ब्रह्मगवी कोई सामान्य गौ नहीं है। यह एक असाधारण गौ है, **अष्टापदी**-आठ इसके पाँव है, **चतुः अक्षी**-चार आँखोंवाली है, **चतुः श्रोत्राः**=चार कानोंवाली है, **चतुर्हनुः**=चार हनुओंवाली है, **द्व्यास्या**-दो मुखोंवाली है और **द्विजिह्वा**=दो जिह्वाओंवाली है, ऐसी **भूत्वा**=बनकर **सा**-वह **ब्रह्मज्यस्य**-ब्राह्मणों को पीड़ित करनेवाले राजा के **राष्ट्रम्**=राष्ट्र को **अवधूनुते**=कम्पित कर देती है। २. ब्रह्मगवी **अष्टापदी** है—आठों योगाङ्गों का प्रतिपादन करनेवाली है और उनके द्वारा आठों सिद्धियों को प्राप्त करानेवाली है। अथवा यह राष्ट्र के आठों सचिवों के कार्यों को ठीक से प्रतिपादन करनेवाली है। **चतुरक्षी**-चार वेदरूपी चार आँखोंवाली है। चार वेद ही इसकी चार आँखें हैं। **चतुः श्रोत्रा**=यह चारों आश्रमों व चारों वर्णों से सुनने योग्य है। **चतुर्हनुः** 'साम, दान, दण्ड, भेद' रूप चारों उपायों में गतिवाली है (हन् गतौ) **द्व्यास्या**-यह दो मुखोंवाली है। एक मुख से राजकार्यों का प्रतिपादन करती है, तो दूसरे मुख से प्रजा के कार्यों को। एक से आचार्य के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करती है तो दूसरे से शिष्य के कर्त्तव्यों का। एक से पति के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करती है तो दूसरे से पत्नी के। यह ब्रह्मगवी एक पक्ष का ही प्रतिपादन नहीं करती। यह **द्विजिह्वा**-दो जिह्वाओंवाली है। एक से यह अभ्युदय का स्वाद लेती है, तो दूसरे से निःश्रेयस का—इहलोक और परलोक का। यह दोनों के स्वाद को मिलाकर लेती है। ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य राजा के राष्ट्र को विनष्ट कर देती है।

भावार्थ—राजा को ब्रह्मगवी के महत्त्व को समझना चाहिए। गोहत्या भी पाप है, परन्तु ब्रह्मगवी की हत्या तो महापाप है। यह हत्या ब्रह्मज्य राजा के राष्ट्र को नष्ट कर डालती है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दुच्छुना

तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना॥ ८॥

१. **यत्र** जिस राष्ट्र में **ब्रह्माणं हिंसन्ति**-ज्ञानी ब्राह्मण को हिंसित करते हैं, **तत् राष्ट्रम्** उस राष्ट्र को **दुच्छुना** दुष्ट विपत्ति (आधि व्याधि) **हन्ति** नष्ट कर डालती है। २. **वै**-निश्चय से **तत् राष्ट्रम्** वह राष्ट्र **आस्रवति**-शत्रुओं के प्रवेश के द्वारा आस्रुत हो जाता है—खाली होकर नष्ट हो जाता है, **इव**-जैसेकि **भिन्नां नावम्**-फूटी नाव को **उदकम्** पानी अन्दर प्रविष्ट होकर नष्ट कर देता है।

भावार्थ—ज्ञानी ब्राह्मण का हिंसन होने पर राष्ट्र पर दुष्ट विपत्तियाँ आपड़ती हैं। इस राष्ट्र में शत्रुओं का प्रवेश होकर दारिद्र्य घर कर लेता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वृक्ष-छाया का अभाव

तं वृक्षा अप सेधन्ति च्छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते॥ ९॥

१. हे **नारद** (नरसमूहं द्यति) अभिमानवश नर समूह को खण्डित व पीड़ित करनेवाले राजन्! **यः** जो भी **ब्राह्मणस्य** ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता के **सत् धनम्** उत्कृष्ट (सत्य) ज्ञानरूपी धन को **अभिमन्यते** (अभिमन्-Injure, threaten) हानि पँहुचाना चाहता है, अथवा उसे भयभीत करना चाहता है, अर्थात् जो राजा ज्ञान प्रसार के कार्य पर प्रतिबन्ध लगाना चाहता है, **तम्**-उसे **वृक्षाः अपसेधन्ति**-वृक्ष अपने से दूर करते हैं और मानो कहते हैं कि **नः छायां मा उपगाः इति**-हमारी छाया में मत आओ, अर्थात् इस अत्याचारी राजा को वृक्ष छाया का सुख भी प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ—ब्राह्मण के ज्ञान-धन पर प्रतिबन्ध लगानेवाले अत्याचारी राजा के राज्य में वृष्टि न होने से छायावाले वृक्षों का भी अभाव हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवकृत विष

विषमेतद्देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत्।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन॥ १०॥

१. **एतत्**-यह वेदज्ञान **विषम्** (विशेषेण स्यति, छोऽन्तकर्मणि) विशेषरूप से बुराइयों का अन्त करनेवाला है। यह प्रभु से **देवकृतम्**-देवों के लिए दिया गया है। इसे **राजा**=संसार के शासक **वरुणः**-पापों के निवारक प्रभु ने **अब्रवीत्**=कहा है। सृष्टि के प्रारम्भ में इसका उच्चारण प्रभु द्वारा होता है। यह वेदज्ञान ही ब्राह्मण की वाणी का विषय बनता है। २. **ब्राह्मणस्य**-इस ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता की **गाम्**=वाणी को **जग्ध्वा**-खाकर, हड़पकर, अर्थात् समाप्त करके, उसपर प्रतिबन्ध लगाकर **राष्ट्रे**-राष्ट्र में **कश्चन न जागार**-कोई जागरित व जीवित नहीं रहता। धर्मज्ञान का लोप हो जाने से सब लोग आलस्य आदि दोषों के शिकार हो जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने वेदज्ञान इसलिए दिया है, क्योंकि यह बुराइयों को समाप्त करनेवाला है। ब्राह्मणों द्वारा राष्ट्र में इसका प्रचार होता है। ब्राह्मण की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाने से राष्ट्र में धर्म का लोप हो जाता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मणी प्रजा पर अत्याचार का परिणाम

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्य᳘धूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्॥ ११ ॥

१. **ताः**=वे **नव नवतयः**=निन्यानवे लोग **याः भूमिः व्यधूनुत**=जिन्हें इस पृथिवी ने कम्पित कर दिया **ब्राह्मणीम्**=ज्ञानी ब्राह्मण से उपदिष्ट मार्ग पर चलनेवाली **प्रजाम्**=प्रजा को **हिंसित्वा**-हिंसित करके **असंभव्यम् एव पराभवन्** अत्याचारी राजा इसप्रकार नष्ट हो गये जिसकी कोई कल्पना भी नहीं थी। २. राजा कई बार शक्ति के घमण्ड में धार्मिक प्रजा पर अत्याचार करने लगता है, परन्तु अन्ततः इसका असम्भव-से प्रतीत होनेवाले ढंग से विनाश हो जाता है।

भावार्थ—सैकड़ों राजा धार्मिक प्रजाओं पर अत्याचार करके अन्ततः विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पदयोपनी कूदी

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं᳘ पदयोपनीम्। तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन्॥ १२ ॥

१. **याम्**-जिस **कूद्यम्**-(कूङ् आर्तस्वरे, कुवं ददाति) आर्तस्वर को देनेवाली—दुःखितों के शब्द को पैदा करनेवाली **पदयोपनीम्**-(युप विमोहने) पाँवों को विमोहित (मूढ़) करनेवाली बेड़ी को **मृताय**-मरण-दण्ड के लिए (मृतं मरणम्, भावे क्तः) **अनुबध्नन्ति**-बाँधते हैं, हे **ब्रह्मज्य**-राष्ट्र में ज्ञान को नष्ट करनेवाले राजन्! **देवाः**=सब विद्वान् **वै**=निश्चय से **तत्** उस बेड़ी को **ते उपस्तरणम्**-तेरे लिए सेज (शय्या) के रूप में **अब्रुवन्**=कहते हैं।

भावार्थ—'ब्रह्मज्य' राजा को कष्ट-स्वर जनक, पाँवो को मूढबना देनेवाली बेड़ी में जकड़कर मृत्युदण्ड देना चाहिए। अत्याचारी राजा को दिया गया यह दण्ड अन्यों के लिए प्रत्यादर्श का काम करेगा।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'कृपमाणा जीता' प्रजा के अश्रु

अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥ १३ ॥

१. **कृपमाणस्य**=(कृप दौर्बल्ये) दुर्बलीक्रियमाण—भूखा रखकर पीड़ित किये जाते हुए **जीतस्य**-पराभूत व्यक्ति के **यानि अश्रूणि**=जो आँसू **वावृतुः**-प्रवृत्त होते हैं, हे **ब्रह्मज्य**-राष्ट्र में ज्ञान को क्षीण करनेवाले राजन्! **देवाः**-देवों ने **तम् अपां भागम्**-उस जल के भाग को (अश्रुजलों को) **वै**=निश्चय से **ते अधारयन्**=तेरे लिए धारण किया है, तेरे लिए सुरक्षित रक्खा है।

भावार्थ—राष्ट्र में ज्ञानक्षय के द्वारा प्रजापीड़क राजा को उन पीड़ित, पराभूत प्रजाओं के अश्रुजलों को स्वयं पीना पड़ता है। वह सब अत्याचार अन्ततः राजा को स्वयं सहन करना पड़ता है।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अत्याचारी राजा को मृत्यु-दण्ड

येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते। तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥ १४ ॥

१. **येन**-जिस जल से **मृतं स्नपयन्ति**=मृतपुरुष को स्नान कराते हैं, **येन**=जिस जल से **श्मश्रूणि**=मुखस्थ बालों को **उन्दते**=गीला करते हैं, हे **ब्रह्मज्य**=ज्ञानक्षय के द्वारा प्रजापीड़क

राजन्! **देवाः** देवों ने **तम्**=उस **अपां भागम्**=जलों के भाग को **ते अधारयन्**-तेरे लिए धारित किया है।

भावार्थ—ब्रह्मज्य राजा को मृत्युदण्ड देकर मलिन जल से उसके स्नान कराये जाने का दृश्य लोग देखें, ताकि वह सबके लिए प्रत्यादर्श बने ।

ऋषिः—**मयोभूः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अनावृष्टि का कष्ट

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥ १५॥

१. **ब्रह्मज्यम्**-ज्ञानक्षय करनेवाले राजा के राष्ट्र में **मैत्रावरुणम् वर्षम्**-मित्र व वरुण सम्बन्धी वृष्टि **न अभिवर्षति**-नहीं बरसती (मित्र-वरुण- अम्लजन व उद्रजन-वे वायुएँ जिनसे जल बनता है)। इस राष्ट्र में अनावृष्टि का दुःखदायी कष्ट होता है। २. **अस्मै** इस ब्रह्मज्य राजा के लिए **समितिः**-राष्ट्रसभा **न कल्पते**-सामर्थ्य को बढ़ानेवाली नहीं होती और यह राजा **मित्रम्**-मित्र-राष्ट्र से भी **वशं न नयते**-इच्छानुकूल कार्य नहीं कर पाता।

भावार्थ—ब्रह्मज्य राजा के राष्ट्र में अनावृष्टि आदि आधिदैविक कष्ट आते हैं, राष्ट्र ब्रह्मसभा इसके सामर्थ्य को बढानेवाली नहीं होती, मित्रराष्ट्र भी इसके अनुकूल नहीं रहते।

विशेष—ब्रह्मज्य राजा के राष्ट्र की दुर्दशा का चित्रण करके संकेत दिया है कि हमें ज्ञान का आदर करते हुए ज्ञानवृद्धि द्वारा ब्रह्मा बनने का प्रयत्न करना है। यह ब्रह्मा ही अगले दो सूक्तों का ऋषि है। ब्रह्मज्य न होकर राजा ब्रह्मा होगा तो इसके राष्ट्र में सदा विजय-दुन्दुभि का नाद उठेगा—

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

उच्चैर्घोषः दुन्दुभिः

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंहइव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि॥ १॥

१. **सत्वनायन्**-सैनिकों में बल प्राप्त कराता हुआ **उच्चैः घोषः**-ऊँचे शब्दवाला **दुन्दुभिः**-युद्धवाद्य **वानस्पत्यः**-वनस्पति (काष्ठ) का बना हुआ है, यह **उस्त्रियाभिः संभृतः**-चमड़े से मढ़ा हुआ है। २. **वाचं क्षुणुवानः**-शब्द करता हुआ **सपत्नान् दमयन्**-शत्रुओं को दबाता हुआ समीप भविष्य में **सिंहः इव जेष्यन्**-सिंह की भाँति शत्रुओं को विजित करता हुआ **अभितंस्तनीहि**=गर्जना कर।

भावार्थ—शत्रुओं का आक्रमण होने पर राष्ट्र में युद्धवाद्य बज उठे। यह अपने ऊँचे शब्द से सैनिकों में बल व उत्साह का सञ्चार करे तथा शत्रुओं के दिलों को दहला दे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऐन्द्रः, शुष्मः अभिमातिषाहः

सिंहइवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः॥ २॥

१. यह **द्रुवयः**-काष्ठ का बना हुआ **विबद्ध**=विशेषरूप से चमड़ों से बद्ध हुआ-हुआ

युद्धवाद्य **सिंहः इव अस्तानीत्**=सिंह की भाँति गर्जना करता है। यह युद्धवाद्य इसप्रकार गर्जता है **इव**-जैसेकि **वासिताम् अभि**=गौ का लक्ष्य करके **ऋषभः क्रन्दन्**=बैल गर्जता है। २. **त्वम्**=तू **वृषा**=शक्तिशाली है। **ते सपत्नाः वध्रयः**=तेरे शत्रु निर्बल हुए हैं। तेरे शत्रु बधिया बैल के समान निर्वीर्य हों। **ते**=तेरा **ऐन्द्रः**=राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला **शुष्मः**=बल **अभिमातिषाहः**=अभिमानयुक्त शत्रुओं का पराभव करनेवाला हो।

भावार्थ—राष्ट्र के युद्धवाद्य की ध्वनि सिंह की गर्जना के समान शत्रुओं के हृदय को भयभीत करनेवाली हो, सैनिकों में बल का सञ्चार करती हुई, शत्रुओं का पराजय करके यह राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाली हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सन्धनाजित्

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित्।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान्प्रच्युता यन्तु शत्रवः॥ ३॥

१. **यूथे**-गौओं के झुण्ड में **वृषा इव**-शक्तिशाली साँड के समान **सहसा विदानः**=बल से जाना गया—बल के कारण प्रसिद्ध—अपने सैनिकों में बल का सञ्चार करनेवाला यह युद्धवाद्य **गव्यन् इव**-(गो=भूमि) राष्ट्र-भूमि की कामना करनेवाला-सा है—राष्ट्रभूमि की यह रक्षा करनेवाला है, **सन्धनाजित्**-शत्रु-धनों का विजय करनेवाला है। २. हे युद्धवाद्य! तू **अभिरुव**=चारों ओर शब्द करनेवाला हो, **परेषाम्**=शत्रुओं के **हृदयम्**=हृदय को **शुचा विध्य**=शोक के द्वारा विद्ध करनेवाला हो। **शत्रवः**-शत्रु **ग्रामान् हित्वा**-अपने ग्रामों को छोड़कर **प्रच्युताः यन्तु**-पराजित हुए-हुए—स्थान-भ्रष्ट हुए-हुए भाग जाएँ।

भावार्थ—युद्धवाद्य का शब्द शत्रु-पराजय द्वारा राष्ट्र-भूमि की रक्षा करनेवाला हो। यह धनों का विजय करे और शत्रु स्थान-भ्रष्ट हुए-हुए भाग खड़े हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ऊर्ध्वमायुः

संजयन्पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः॥ ४॥

१. हे दुन्दुभे! तू **पृतनाः संजयन्**-शत्रुओं को पराजित करता हुआ **ऊर्ध्वमायुः**-ऊँचे शब्दवाला **गृह्या गृह्णानः**=ग्रहण के योग्य सब पदार्थों का ग्रहण करनेवाला **बहुधा विचक्ष्व**-बहुत प्रकार से राष्ट्र को देखनेवाला हो—राष्ट्र का रक्षण करनेवाला हो। २. हे **दुन्दुभे**=युद्धवाद्य! तू **दैवीम्**-(दिव् विजिगीषा) शत्रु विजय की कामनावाली **वाचम्**=वाणी को **आ गुरस्व**-चारों ओर घोषित कर। **वेधाः**-राष्ट्र का निर्माण करनेवाला बनकर **शत्रूणां वेदः**=शत्रुओं के धन का **उपभरस्व**=हरण करनेवाला हो।

भावार्थ—यह युद्धवाद्य शत्रुसैन्यों का पराजय करे और शत्रुओं के धनों का अपहरण करके राष्ट्रकोश को भरनेवाला हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शत्रु-स्त्रियों का भाग खड़ा होना

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्॥ ५॥

१. **दुन्दुभेः** युद्धवाद्य की **प्रयतां वदन्तीम्** (प्र यता) एकदम नियमितरूप से उच्चरित होती हुई **वाचम्**-वाणी को **आशृण्वती**-समन्तात् श्रवण करती हुई **नाथिता**-उपतप्त हुई हुई (नाथ उपतापे) **घोषबुद्धा**-युद्धवाद्य के घोष से प्रबुद्ध हुई-हुई **अमित्री नारी** शत्रु स्त्री **समरे वधानां भीता** युद्ध में वधों से भयभीत हुई हुई **पुत्रम्**-अपनी सन्तान को **हस्तगृह्य**=हाथ से पकड़कर **धावतु**=भाग खड़ी हो।

भावार्थ—युद्धवाद्य का शब्द शत्रुओं में भय का सञ्चार कर दे। शत्रु स्त्रियाँ अपने पुत्रों को लेकर भाग खड़ी हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अमित्रसेनाम् अभिभञ्जमानः

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद्वद दुन्दुभे सूनृतावत्॥ ६॥

१. हे **दुन्दुभे**=युद्धवाद्य! तू **पूर्वः**-सबसे प्रथम स्थान में होता हुआ **वाचं प्रवदासि**=युद्ध के लिए आह्वान की वाणी बोलता है। **भूम्याः पृष्ठे**-इस भू पृष्ठ पर **रोचमानः** दीप्त होता हुआ तू **वद**-बोल, शब्द कर। २. **अमित्रसेनाम्**-शत्रु सेना को **अभिजञ्जभानः**-रण से भगाता हुआ तू **द्युमत् वद**=दीप्त होकर बोल। हे **दुन्दुभे**=युद्धवाद्य! तू **सूनृतावत्**-राष्ट्र में शुभ (सु), दुःखों का परिहाण करनेवाली (ऊन्), सत्य (ऋत) वाणीवाला हो। तेरे शब्द से राष्ट्र के सैनिकों व प्रजाओं में उत्साह का सञ्चार हो।

भावार्थ—युद्धवाद्य का शब्द भू पृष्ठ पर दीप्तिवाला हो। यह अमित्र-सेना को रण से भगानेवाला हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उत्पिपानः श्लोककृत्

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक्ते ध्वनयो यन्तु शीभम्।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी॥ ७॥

१. हे युद्धवाद्य! **इमे नभसी अन्तरा**-इन द्युलोक व पृथिवीलोक के बीच में **घोषः अस्तु**-तेरा घोष गूँज उठे (नभश्च पृथिवी चैव तुमुलो व्यनुनादयन्)। **ते ध्वनयः पृथक् शीभं यन्तु** तेरी ध्वनियाँ चारों दिशाओं में शीघ्र फैलें। २. **उत्पिपानः**-खूब ऊँचा उठता हुआ—बढ़ता हुआ तू **श्लोककृत्**=हमारे सैनिकों का यश बढ़ानेवाला हो, **मित्रतूर्याय**-मित्र सैन्यों की त्वरा से युक्त गति के लिए होता हुआ (तुरी गतौ) **स्वर्धी**-उत्तम ऋद्धिवाला तू **अभिक्रन्द** चारों ओर आह्वान कर, **स्तनय**=खूब गर्जना करनेवाला हो।

भावार्थ—युद्धवाद्य का शब्द आकाश व पृथिवी को अनुनादित कर दे। बढ़ता हुआ यह शब्द राष्ट्र-सैन्यों की यशोवृद्धि का कारण बने।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

इन्द्रमेदी

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि॥ ८॥

१. **धीभिः कृतः**-बुद्धिपूर्वक बनाया हुआ—बुद्धिमान् शिल्पियों द्वारा निर्मित यह युद्धवाद्य

वाचं प्रवदाति=ऊँचा शब्द करता है। हे युद्धवाद्य! तू **सत्वनाम्**=वीरों के **आयुधानि**=आयुधों को **उद्धर्षय**=ऊँचा उठा। तेरे शब्द से उत्साहित होकर वे अपने-अपने शस्त्रों को उठाएँ। २. **इन्द्रमेदी**-वीरों के साथ स्नेह करनेवाला तू **सत्वनः निह्वयस्व**=वीर सैनिकों को युद्ध के लिए पुकार। **मित्रैः अमित्रान् अवजंघनीहि**=मित्रों के द्वारा अमित्रों को तू सुदूर भगानेवाला व उन्हें नष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ—कुशल शिल्पियों से बनाया हुआ यह युद्धवाद्य ऊँचा शब्द करता है। इसके शब्द को सुनकर वीर सैनिक अस्त्रों को उठाते हैं और शत्रुओं को दूर भगाने व नष्ट करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

संक्रन्दनः प्रवदः

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद्बहुधा ग्रामघोषी।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान्कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे॥ ९॥

१. यह युद्धवाद्य **संक्रन्दनः**=युद्ध के लिए आह्वान करनेवाला है, **प्रवदः**=प्रकर्षेण हमारे कर्त्तव्यों की घोषणा करनेवाला है, **धृष्णुषेणः**=सेना को शत्रुओं का धर्षण करनेवाली बनाता है, **प्रवेदकृत्**=राष्ट्र के व्यक्तियों में चेतना भरनेवाला है, **बहुधा ग्रामघोषी**=सैन्यसमूह में अनेक प्रकार से घोषणा करनेवाला है। २. यह युद्धवाद्य चेतना उत्पन्न करने के कारण **श्रेयः वन्वानः**=कल्याण प्राप्त करानेवाला व **वयुनानि विद्वान्**=हमारे कर्मों का—कर्त्तव्यों का ज्ञान देनेवाला है। हे युद्धवाद्य! **द्विराजे**=दो राजाओं में चलनेवाले युद्ध में तू **बहुभ्यः कीर्तिं विहर**=बहुत को यशस्वी बनानेवाला हो—राष्ट्र-रक्षा के लिए प्राणार्पण करने की प्रेरणा करता हुआ तू उन्हें कीर्ति प्राप्त करा।

भावार्थ—युद्धवाद्य हमारे सैन्य को शत्रुओं का धर्षण करनेवाला बनाता है। यह हममें भी कर्त्तव्यकर्मों की चेतना जगाता हुआ हमारे लिए कल्याणकर होता है, कितने ही वीरों को यह कीर्ति प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सहीयान्-संग्रामजित्

श्रेयःकेतो वसुजित्सहीयान्त्संग्रामजित्संशितो ब्रह्मणासि।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन्दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः॥ १०॥

१. ये युद्धवाद्य! तू **श्रेयः केतः**=कल्याण में निवास करनेवाला (कित निवासे), **वसुजित्**=धनों का विजय करनेवाला, **सहीयान्**=शत्रुओं का मर्षण करनेवाल **संग्रामजित्**=संग्राम को जीतनेवाला **ब्रह्मणा संशितः असि**=सत्य द्वारा तीव्र किया गया है (ब्रह्म-truth)। युद्ध में जिसका पक्ष सत्य का होता है, वह मन में उत्साहवाला होने से इस युद्धवाद्य को भी उत्साहपूर्वक बजा पाता है। **इव**-जैसे **अधिषवणे**=ज्ञानोत्पादन की क्रिया में **अद्रिः ग्रावा**-आदरणीय (आद्रियते), विषयों से विदीर्ण न किया जानेवाला (न दीर्यते), ज्ञानोपदेष्टा (गृणाति) **अंशून्**=ज्ञान की रश्मियों पर नृत्य करनेवाला होता है, उसी प्रकार हे **दुन्दुभे**-युद्धवाद्य! तू **गव्यन्**=राष्ट्रभूमि की रक्षा की कामनावाला होता हुआ **वेदः अधिनृत्य**=धनों पर नृत्य करनेवाला हो, शत्रु को पराजित करके राष्ट्र के धन को बढ़ानेवाला हो।

भावार्थ—युद्धवाद्य सत्य के पक्ष में उत्साह से बज उठता है और शत्रु-मर्षण करता हुआ राष्ट्रकोश का अभिवर्धक होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शत्रूषाट् नीषाट्

शत्रूषाणनीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित्।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद्वदेह ॥ ११ ॥

१. हे युद्धवाद्य! तू **शत्रूषाट्**-शत्रुओं को कुचल देनेवाला **नीषाट्**-निश्चय से कुचल देनेवाला, **अभिमातिषाहः**-अभिमानी शत्रुओं का पराभव करनेवाला है। **गवेषणः** राष्ट्रभूमि की रक्षा की कामनावाला (गो+इष्), अतएव **सहमानः**=शत्रुओं का पराभविता व **उद्भित्** उखाड़ फेंकनेवाला है। **वाग्वी मन्त्रं इव**-जैसे वाणी के द्वारा स्तुति करनेवाला मन्त्र को उच्चारित करता है, इसीप्रकार हे युद्धवाद्य! तू भी **वाचं प्रभरस्व**-वाणी का—शब्द का प्रकर्षेण भरण कर—खूब उच्च शब्द कर और **इह** यहाँ—रणभूमि में **सांग्रामजित्याय** संग्राम में विजय के लिए **इषम् उत् वद** प्रकर्षेण प्रेरणा प्राप्त करा, तेरा शब्द योद्धाओं को उत्कृष्ट प्रेरणा दे और वे युद्धों में विजयी बनें।

भावार्थ—युद्धवाद्य शत्रुओं को कुचल डालता है और योद्धाओं को उत्कृष्ट प्रेरणा देकर युद्ध में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अच्युतच्युत्

अच्युतच्युत्समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥ १२ ॥

१. हे युद्धवाद्य! तू **अच्युतच्युत्**-दृढ़ शत्रुओं के भी पैर उखाड़ देनेवाला है, **समदः गमिष्ठाः**-हर्षयुक्त हुआ तू शत्रुओं के प्रति जानेवाला—उनपर आक्रमण करनेवाला है, **मृधः जेता** संग्रामों का विजय करनेवाला **पुरः एता**=आगे बढ़नेवाला व **अयोध्यः** युद्ध न करने योग्य है—तुझे जीतना किसी के लिए भी सम्भव नहीं। २. **इन्द्रेण**-शत्रुओं के विद्रावक सेनानी से तू **गुप्तः**-सुरक्षित हुआ है, **विदथा निचिक्यत्**=ज्ञातव्य कर्मों को जानता हुआ, अर्थात् योद्धाओं को उनके कर्त्तव्यकर्मों में प्रेरित करता हुआ तू **द्विषताम्**-शत्रुओं के **हृद्द्योतनः**=(द्योतते ज्वलतिकर्मा—१.१६) हृदयों को सन्तप्त करनेवाला है, **शीभं याहि** तू शीघ्रता से शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला हो। तू बज उठ और योद्धा शत्रु पर आक्रमण करनेवाले हों।

भावार्थ—यह युद्धवाद्य दृढ़ शत्रुओं को भी परास्त करनेवाला है—शत्रुओं के हृदय को सन्तप्त करनेवाला है। यह योद्धाओं को शत्रुसैन्य पर आक्रमण के लिए प्रेरित करता है।

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

विहृदय वैमनस्यम्

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान्दुन्दुभे जहि ॥ १ ॥

१. हे **दुन्दुभे**-युद्धवाद्य! तू **अमित्रेषु** शत्रुओं में **विहृदयं वैमनस्यं वद**-हृदय की व्याकुलता व मन की उदासीनता को कह दे—अपनी ऊँची ध्वनि से उन्हें व्याकुल व उदासीन कर दे। २. तेरे द्वारा हम **अमित्रेषु**-शत्रुओं में **विद्वेषं कश्मशं भयम्**-द्वेष, कश्मकश—मनमुटाव व भय

को **निदध्मसि**=स्थापित करते हैं। हे **दुन्दुभे**=युद्धवाद्य! तू **एनान्**=इन शत्रुओं को **अवजहि**=सुदूर नष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ—हमारा युद्धवाद्य शत्रुओं में द्वेष, वैमनस्य व भय उत्पन्न करके उन्हें नष्ट करनेवाला हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आज्ये हुते

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते॥ २॥

१. **आज्ये हुते**=युद्ध में परस्पर की द्वेषाग्नि में एक बार शस्त्र उठ जाने पर (तेजो वा आज्यम्, वज्रो वा आज्यम्—तै० ३.९.४.६; ३.६.४.१५) युद्ध की अग्नि में अस्त्रों की आहुति पड़ जाने पर **अमित्राः**=हमारे शत्रु **मनसा चक्षुषा हृदयेन च**=मन, नेत्र व हृदय से **उद्वेपमानाः**=काँपते हुए **प्रत्रासेन**=प्रकृष्ट भय से **बिभ्यतः**=भयभीत होते हुए **धावन्तु**=भाग खड़े हों।

भावार्थ—युद्धवाद्य के बज उठने पर—शस्त्रों के प्रहार के आरम्भ में ही हमारे शत्रु कम्पित व भयभीत होकर भाग खड़े हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आज्येन अभिघारितः

वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः। प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः॥ ३॥

१. **वानस्पत्यः**=वनस्पति (काष्ठ) से बना हुआ **उस्त्रियाभिः**=चर्म-रज्जुओं से **संभृतः**=सम्यक् मढ़ा हुआ यह युद्धवाद्य **विश्वगोत्र्यः**=सब भूमि का उत्तम रक्षक है। २. **आज्येन**=तेजस्विता व शस्त्रों (वज्रों) के द्वारा **अभिघारितः**=दीप्त किया हुआ तू **अमित्रेभ्यः**=शत्रुओं के लिए **प्रत्रासं वद**=भय को कहनेवाला हो, तेरा उग्र घोष शत्रु-हृदयों को भयभीत कर दे।

भावार्थ—युद्धवाद्य राष्ट्रभूमि का रक्षक है, तेजस्विता व शस्त्रों से युक्त हुआ-हुआ यह शत्रुओं को भयभीत करनेवाला है। युद्धवाद्य के साथ योद्धाओं की तेजस्विता व शस्त्र-प्रहार शत्रुओं को परास्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

शत्रुओं की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय॥ ४॥

१. **यथा**=जैसे **आरण्याः मृगाः**=जंगल के मृग **पुरुषात्**=पुरुष से—शिकारी से **अधि-संविजन्ते**=भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं, हे **दुन्दुभे**=युद्धवाद्य! **एव**=इसीप्रकार तू **अमित्रान् अभिक्रन्द**=शत्रुओं पर गर्जना करनेवाला हो, **प्रत्रासय**=उन्हें भयभीत कर दे, **अथ उ चित्तानि मोहय**=और उनके चित्तों को मोहित कर डाल, उन्हें मूढ़ बना डाल—उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्य सूझे ही नहीं, वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन जाएँ।

भावार्थ—युद्धवाद्य का शब्द सुनकर हमारे शत्रु ऐसे भाग खड़े हों जैसे शिकारी से वन-मृग भाग खड़े होते हैं।

ऋषिः -**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः ५ **पथ्यापङ्क्तिः**, ६ **जगती** ॥

वृकात् अजावयः, श्येनात् पतत्रिणः

यथा॒ वृका॑दजा॒वयो॒ धाव॑न्ति ब॒हु बिभ्य॑तीः।
ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि॑ मोहय॥ ५॥
यथा॑ श्ये॒नात्प॑त॒त्रिणः॑ संवि॒जन्ते॒ अह॑र्दिवि सिं॒हस्य॑ स्त॒नथो॒र्यथा॑।
ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि॑ मोहय॥ ६॥

१. **यथा** जैसे **अजा-अवयः** भेड़ बकरियाँ **वृकात्**-भेड़िये से **बहु बिभ्यतीः**-बहुत डरती हुई **धावन्ति**-भाग खड़ी होती है, **एव** इसीप्रकार हे **दुन्दुभे**-युद्धवाद्य! **त्वम्** तू **अमित्रान् अभिक्रन्द** -शत्रुओं पर गर्जना कर **प्रत्रासय** -उन्हें भयभीत कर दे, **अथ उ चित्तानि मोहय**-और उनके चित्तों को मूढ़ बना डाल। २. **यथा**-जैसे **श्येनात्**-बाज़पक्षी से **पतत्रिणः**-पक्षी **संविजन्ते**-भयभीत होकर उड़ जाते हैं और **यथा**-जैसे **अहर्दिवि**-दिन प्रतिदिन **सिंहस्य स्तनयोः** -सिंह की गर्जना से पशु भय-सञ्चलित हो जाते हैं, **एव**-उसी प्रकार हे **दुन्दुभे** युद्धवाद्य! **त्वम्** तू **अमित्रान् अभिक्रन्द** -शत्रुओं पर गरज उठ, **प्रत्रासय**-उन्हें भयभीत कर दे **अथ उ**-और निश्चय से **चित्तानि मोहय**-उनके चित्तों को मूढ बना डाल।

भावार्थ—युद्धवाद्य के बजने पर शत्रु इसप्रकार भय-सञ्चलित हो जाएँ जैसे भेड़िये से भेड़ बकरियाँ, बाज़ से पक्षी व शेर की गर्जना से पशु भाग खड़े होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दुन्दुभिः (दुन्दुशब्देन भाययति)

परा॒मित्रा॒न्दुन्दु॒भिना॑ हरि॒णस्या॒जिने॑न च।
सर्वे॑ दे॒वा अ॑तित्रस॒न्ये सं॑ग्रा॒मस्येश॑ते॥ ७॥

१. **ये** जो **संग्रामस्य ईशते** संग्राम के स्वामी होते हैं, वे **सर्वे देवाः**-सब शत्रु विजिगीषावाले पुरुष **हरिणस्य अजिनेन**-हरिण के चमड़े से मढ़ी हुई **दुन्दुभिना**-दुन्दुभि से **च** ही **अमित्रान्** शत्रुओं को **परा अतित्रसन्** भयभीत कर सुदूर भगा देते हैं।

भावार्थ—युद्धवाद्य को कुशलता से बजानेवाले व्यक्ति इस दुन्दुभि से ही शत्रुओं को भयभीत कर डालते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

छायया सह इन्द्रः

यैरिन्द्रः॑ प्र॒क्रीड॑ते प॒द्घो॒षैश्छा॒यया॑ स॒ह। तैर॒मित्रा॑स्त्रसन्तु नो॒ऽमी ये यन्त्य॑नीक॒शः॥ ८॥

१. शत्रुओं का छेदन करनेवाली सेना यहाँ 'छाया' कही गई है। **इन्द्रः**-शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला सेनापति **छायया सह** शत्रुओं का छेदन करनेवाली सेना के साथ **यैः पद्घोषैः** जिन चरणाघात जनित शब्दों के साथ [Marching में होनेवाले शब्दों के साथ] **प्रक्रीडते**-युद्ध-क्रीड़ा करता है, **तैः** उन पद्घोषों से **अमी** वे **ये**-जो **अनीकशः**-एक एक टुकड़ी करके **यन्ति**-गति करते हैं, वे **नः अमित्राः**-हमारे शत्रु **त्रसन्तु** भयभीत हों।

भावार्थ —सेनापति के साथ सेना के पादाघात जनित घोषों से ही शत्रु-सैन्य भयभीत होकर भाग जाए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वानस्पत्यो दुन्दुभिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ज्याघोषाः, दुन्दुभयः

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः॥ ९॥

१. हमारी **ज्याघोषाः**=धनुष की डोरियों की आवाज़ें और **दुन्दुभयः**=भेरियाँ **याः दिशः**-जिस भी दिशा में **अभिक्रोशन्तु**-शत्रुओं का आह्वान करें—उन्हें ललकारें, उन्हीं दिशाओं में **अमित्राणाम्**=शत्रुओं की **अनीकशः**=टुकड़ियों-की-टुकडियाँ **सेनाः**-सेनाएँ **यतीः**-जाती हुई **पराजिताः**=पराजित हो जाएँ।

भावार्थ—हमारे ज्याघोष व दुन्दुभि के शब्द शत्रुओं को भग्न व पराजित करनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आदित्य-मरीचयः

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये॥ १०॥

१. हे **आदित्य**-सूर्य! **चक्षुः आदत्स्व**=तू शत्रु की आँखों को छीन ले, उन्हें चुँधिया दे। **मरीचयः अनुधावत**=हे किरणो! तुम शत्रुओं का पीछा करो। 'आदित्य' सेनापति है—शत्रुओं के बल का आदान करनेवाला। 'मरीचयः' सैनिक हैं (म्रियते शत्रुतमः अस्मिन्) जिसके होने पर शत्रुओं का अन्धकार समाप्त हो जाता है। २. **विगते बाहुवीर्ये**=जब शत्रुओं का बाहुबल टूट जाए तब **पत्संगिनीः आसजन्तु**=पैरों में पड़नेवाली रस्सियाँ शत्रुओं के पैरों में लग जाएँ।

भावार्थ—सेना के साथ सेनापति शत्रु का पीछे करे, शत्रु को थकाकर उन्हें बेड़ियाँ पहनाकर कारागृह में डाल दे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यादयः**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्**॥

राजा=सोमः, वरुणः, इन्द्रः=महादेवः मृत्युः

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः॥ ११॥

१. हे **मरुतः**=सैनिको! **यूयम्**=तुम **उग्राः**=तेजस्वी हो, **पृश्निमातरः**=भूमि (पृश्नि) को अपनी माता समझनेवाले हो। **इन्द्रेण युजा**=शत्रुविद्रावक सेनापति के साथ मिलकर **शत्रून् प्रमृणीत**=शत्रुओं को कुचल दो। २. तुम्हारे राष्ट्र का **राजा**=शासक **सोमः**-बड़े सौम्य स्वभाव का व सोम (शक्ति) का पुञ्ज है। वह **राजा**-शासक **वरुणः**=प्रजा के कष्टों का निवारण करनेवाला है **उत**-और **इन्द्रः**-यह शत्रुविद्रावक सेनापति **महादेवः**-महान् विजिगीषु हैं (दिव् विजिगीषायाम्), शत्रुओं को जीतने की कामनावाला है। यह तो शत्रुओं के लिए साक्षात् **मृत्युः**=मौत ही है।

भावार्थ—राष्ट्र के सैनिक मातृभूमि की रक्षा के लिए विजिगीषु व शत्रुओं के लिए मृत्युभूत सेनापति के साथ मिलकर शत्रुओं को कुचलनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यादयः**॥ छन्दः—**त्रिपदायवमध्यागायत्री**॥

देवसेना सूर्य केतवः

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः। अमित्रान्नो जयन्तु स्वाहा॥ १२॥

१. **एताः** ये **नः**=हमारी **देवसेनाः**-शत्रुओं को जीतने की कामनावाली सेनाएँ **सूर्यकेतवः**-सूर्य के झण्डेवाली हों। सूर्य से ये निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करें कि ''जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, हमें शत्रुओं के अन्धकार को नष्ट करना है'', ये **सचेतसः**=सदा चेतना से युक्त हों—इनके होश सदा स्थिर रहें—ये घबरा न जाएँ। २. ये सेनाएँ **अमित्रान् जयन्तु**-शत्रुओं को जीतनेवाली हों। **स्वाहा**-हम भी अपना त्याग करनेवाले बनें (स्व+हा), राष्ट्र रक्षा के लिए कुछ न-कुछ बलिदान करनेवाले बनें।

भावार्थ—हमारी सेनाएँ विजिगीषावाली हों। इनके झण्डे पर सूर्य का चिह्न हो। उससे ये शत्रुरूप अन्धकार को समाप्त करने की प्रेरणा लें। ये शत्रुओं को जीतें। हम भी स्वार्थ-त्याग की वृत्ति से राष्ट्र-रक्षा में सहयोगी बनें।

विशेष—सुरक्षित राष्ट्र में उन्नति-पथ पर चलता हुआ व्यक्ति अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करके 'भृगु' बनता है। शरीर को स्वस्थ बनानेवाला यह अङ्गिरा होता है। अगला सूक्त इसी 'भृगु अङ्गिरा' का है।

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

नीरोगता, पवित्र बल, निर्द्वेषता

अ॒ग्निस्त॒क्मान॒मप॑ बाधतामि॒तः सोमो॒ ग्रावा॒ वरु॑णः पू॒तद॑क्षाः।
वेदि॑र्ब॒र्हिः स॒मिधः॒ शोशु॑चाना॒ अप॒ द्वेषां॑स्यमु॒या भ॑वन्तु॥ १॥

१. **अग्निः** शरीर की उचित ऊष्मा **इतः**-यहाँ से—शरीर से **तक्मानम्**-जीवन को कष्टमय बनानेवाले रोग को **अपबाधताम्**-दूर रोकनेवाली हो। **सोमः**-शरीरस्थ वीर्य धातु **ग्रावा**-(अश्मा भवतु नस्तूनः) पत्थर के समान दृढ़ शरीर, **वरुणः**-द्वेष का निवारण—निर्द्वेषता—ये सब **पूतदक्षाः**-शरीर के बल को पवित्र करनेवाले हों। २. **वेदिः**-यज्ञ की वेदि, **बर्हिः**-वेदि को आस्तीर्ण करनेवाली कुशा घास, **समिधः**=समिधाएँ—ये सब **शोशुचानाः**-हमारे घरों में दीप्त होती हुई हों। यज्ञों के द्वारा ही रोगरूप शत्रुओं का प्रणोदन होगा। **अमुया**=इस सारी प्रक्रिया से **द्वेषांसि अपभवन्तु**-द्वेष हमारे घरों से दूर हो जाएँ। वस्तुतः स्वस्थ शरीर व यज्ञादि कर्म निर्द्वेषता को उत्पन्न करते हैं।

भावार्थ—शरीर की उचित ऊष्मा हमें नीरोग बनाए। वीर्य-दृढ़ शरीर व निर्द्वेषता हमारे बलों को पवित्र करें। वेदि, कुशा व समिधाएँ आदि सब यज्ञ सामग्री हमारे घरों में दीप्त हों, जिससे हमारे जीवन एकदम द्वेषशून्य बनें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'न्यङ् अधराङ् परा' ऐहि

अ॒यं यो विश्वा॒न्हरि॑तान्कृणोष्यु॑च्छो॒चय॑न्न॒ग्निरि॑वाभि॒दुन्वन्।
अधा॒ हि त॑क्मन्न॒रसो हि भूया अधा॒ न्य॑ङ्ङ॒धराङ्॒ वा॒ परे॑हि॥ २॥

१. हे **तक्मन्**-ज्वर! **यः अयम्**-जो यह तू **विश्वान्**-सबको **हरितान् कृणोषि**-निस्तेजता के कारण पीला-पीला सा कर देता है, **उच्छोचयन्**-जो सन्तप्त करता हुआ **अग्निः इव अभिदुन्वन्**-अग्नि के समान उपतप्त करता हुआ होता है। २. हे ज्वर! वह तू **अध**-अब **हि**=निश्चय से **अरसाः हि भूयाः**-निःसार—निस्तेज ही हो जाए। **अध**-अब **न्यङ्**-तेरी गति नीचे की ओर हो **वा अधराङ्**=निश्चय से उतर जा, **परा इहि**=तू हमसे सुदूर चला जा।

भावार्थ—ज्वर हमें निस्तेज करता है। यह सन्तप्त करके कष्ट देता है। इसे हम उचित औषधोपचार के द्वारा नष्ट करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विश्वधा वीर्य

यः परुषः पारुषेयो ऽवध्वंसइवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ ३ ॥

१. हे **विश्वधावीर्य**=सब ओर वीर्य को धारण करनेवाली ओषधे! तू **तक्मानम्**=ज्वर को **अधराञ्चं परासुव**=नीचे करके दूर भगा दे, विरेचन के द्वारा नीचे की ओर ले-जाकर नष्ट कर दे। २. उस ज्वर को दूर कर दे **यः**=जो **पारुषेयः**=शरीर के पर्व-पर्व में बसा हुआ है, **परुषः**=भयंकर है, **अरुणः इव**=अग्नि की भाँति **अवध्वंसः**=देह को (जलाकर) नष्ट करनेवाला है।

भावार्थ—विश्वधावीर्य ओषधि हमारे पर्व पर्व में बसे भयंकर रोग को विरेचित करके नष्ट कर देती है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शकम्भरस्य मुष्टिहा

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥

१. इस **तक्मने**=ज्वर के लिए **नमः कृत्वा**=नमस्कार करके **अधराञ्चं प्रहिणोमि**=इसे नीचे की ओर गतिवाला करके दूर भेज देता हूँ। २. **शकम्भरस्य**-अपने में शक्ति का भरण करनेवाले का भी—शक्तिशाली का भी **मुष्टिहा**=(मुष स्तेये) शक्तिशोषण के द्वारा विनाश करनेवाला यह ज्वर **पुनः**-फिर **महावृषान् एतु**=बहुत अधिक वृष्टिवाले देशों में जाए।

भावार्थ—ज्वर को दूर से ही नमस्कार करना ठीक है। इसे विरेचक ओषधि द्वारा निम्नगतिवाला करना चाहिए। यह शक्तिशाली को भी निस्तेज करके नष्ट कर देता है। अतिवृष्टिवाले देशों में यह फिर-फिर उत्पन्न हो जाता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती** ॥

ज्वर कहाँ ?

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥ ५ ॥

१. **अस्य**-इस ज्वर का **ओकः**-घर **मूजवन्तः**=मूँज-घासवाले प्रदेश हैं—इन्हीं स्थानों में मच्छर आदि की सम्भावनाएँ अधिक होती है। ये मच्छर ही ज्वर को फैलाते हैं। **अस्य**=इसका **ओकः**=घर **महावृषाः**=अधिक वृष्टिवाले प्रदेश हैं। इनमें ज्वर की सम्भावना अधिक होती है। वृष्टि में अग्निमान्द्य होकर ज्वर की आंशका हो ही जाती है। २. हे **तक्मन्**=ज्वर! **यावत् जातः**=जब से तू हुआ है, **तावान्**-उतना तू **बल्हिकेषु**=(बल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु) बहुत बोलनेवालों में, हिंसा की वृत्तिवालों में, हर समय अपने को घरों में ढके रहनेवालों में—खुले में न रहनेवालों में **न्योचरः असि**=(नि+उच् +अर) निश्चय से समवेत होनेवाला है। बोलने में शक्तिक्षीण होती है, हिंसक की मानस स्थिति ठीक नहीं होती, हर समय घर में पड़े रहनेवाले को शुद्ध वायु के सेवन का अवसर नहीं होता, अतः ये सब बातें ज्वरोत्पत्ति का कारण बनती हैं।

भावार्थ—बहुत घासवाले व अतिवृष्टिवाले प्रदेश ज्वर का अधिष्ठान बनते हैं। परिभाषण, हिंसा व आच्छादन के दोषवाले लोग ज्वर से ग्रस्त होते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

असंयम व ज्वर

तक्मन्व्या᳡ल वि गद व्य᳡ङ्ग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय॥ ६॥

१. हे **तक्मन्** जीवन को कष्टमय बनानेवाले, **व्याल**-सर्प के समान विषैले, **व्यंग**-(वि अङ्ग) अङ्गों को विकृत कर देनेवाले, **वि-गद**-विशिष्ट ज्वर! तू **भूरि यावय** हमें तो बहुत दूर छोड़ा जा—हमसे दूर चला जा। २. तू **निष्टक्वरीम्** (निः तक हसने) निकृष्ट परिहास करनेवाली **दासीम्**-शक्तियों का क्षय करनेवाली दासी की **इच्छ**-कामना कर—उसी को प्राप्त हो, **तां वज्रेण समर्पय**-उसी को अपने वज्र से पीड़ित कर (ऋ हिंसायाम्)। तेरा वज्र इस ठठोल, असंयमी स्त्री को ही आहत करे।

भावार्थ—ज्वर शरीर में विषों को उत्पन्न कर देता है, अङ्गों को विकृत कर देता है, जीवन को कष्टमय बना देता है। असंयमी और शक्ति का क्षय कर लेनेवाले व्यक्तियों को यह प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मूजवतः, बल्हिकान्, प्रफर्व्यम्

तक्मन्मूजवतो गच्छ बल्हिकान्वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं᳡ तां तक्मन्वी᳡व धूनुहि॥ ७॥

१. हे **तक्मन्** ज्वर! तू **मूजवतः गच्छ**-मूँज घासवाले प्रदेशों में जा, **वा**-अथवा **परस्तराम्** हमसे दूर तू **बल्हिकान्** बहुत बोलनेवाले, हिंसा की वृत्तिवाले, सदा घर में घुसे रहनेवाले को प्राप्त हो। २. तू उस **शूद्राम्** अनपढ़, असंस्कृत स्त्री की इच्छा कर जोकि **प्रफर्व्यम्**-(फर्व गतौ) हर समय इधर-उधर भटकनेवाली हो (निष्टक्वरीं दासीम्—मन्त्र ६)। हे **तक्मन्**-ज्वर! तू **ताम्**-उस स्त्री को ही **वि इव**-खुब ही **धूनुहि**-कम्पित कर।

भावार्थ—ज्वर के प्रदेश में अतिशयेन घासवाले प्रदेश हैं। यह बहुत बोलनेवाले, हिंसक, घर में घुसे रहनेवाले लोगों को प्राप्त होता है। यह असंयमी व असंस्कृत स्त्रियों को कम्पित करता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

महावृषान् मूजवतः

महावृषान्मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा॥ ८॥

१. हे ज्वर! तू **महावृषान्** अति वृष्टिवाले प्रदेशों को तथा **मूजवतः** घासवाले प्रदेशों को **परेत्य** सुदूर प्राप्त होकर **बन्धु अद्धि** उन्हें बाँधनेवाला होकर खानेवाला बन। तेरा बन्धन इन प्रदेशों को ही प्राप्त हो—इन्हें ही तू खा। २. **एतानि**-इन अतिवृष्टिवाले व घासवाले प्रदेशों को ही **तक्मने ब्रूमः**-ज्वर के लिए प्रकर्षेण कहते हैं। **इमा**=ये हमारे शरीर तो **वा**-निश्चत से **अन्यक्षेत्राणि** अन्य ही क्षेत्र हैं—ये वे क्षेत्र नहीं जहाँ ज्वर आया करता है।

भावार्थ—ज्वर अतिवृष्टिवाले, घास-फूँस से भरे प्रदेशों में ही लोगों को जकड़कर पीड़ित करनेवाला हो। हमारे शरीर ज्वर के अधिष्ठान नहीं हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रार्थः तक्मा

अ॒न्य॒क्षे॒त्रे न र॑मसे व॒शी सन्मृ॑डयासि नः।
अभू॒दु प्रार्थ॑स्त॒क्मा स ग॑मिष्य॒ति बल्हि॑कान्॥ ९॥

१. हे तक्मन्! तू **अन्यक्षेत्रे**-इस असाधारण मानव शरीर में (Extra-ordinary) **न रमसे**=क्रीड़ा नहीं करता। **वशी सन्**-वश में हुआ-हुआ—काबू किया हुआ तू **नः मृडयासि**-हमें सुखी करता है। २. **तक्मा**-यह ज्वर **उ**=निश्चय से **प्रार्थः अभूत्**=प्रकृष्ट याचनावाला हुआ, अर्थात् जब इस ज्वर को मानव-शरीर में स्थान न मिला तो यह मानो दीनता से पूछता है कि मैं कहाँ जाऊँ? तो इसे यही उत्तर मिलता है कि तू बल्हिकों के प्रति जा, अतः **सः**-वह ज्वर **बल्हिकान् गमिष्याति**-बहुत बोलनेवाले, हिंसक वृत्तिवाले (मांसाहारी), घरों में घुसे रहनेवाले लोगों को प्राप्त होगा।

भावार्थ—ज्वर अद्भुत मानव-शरीर में क्रीडा न करता हुआ, हमें सुखी करता है, यह बल्हिकों को ही प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शीतः ज्वरः

यत्त्वं शी॒तोऽथो॑ रू॒रः स॒ह का॒सावे॑पयः।
भी॒मास्ते॑ तक्मन्हे॒तय॒स्ताभि॑ः स्म॒ परि॑ वृङ्ग्धि नः॥ १०॥

१. हे **तक्मन्**=ज्वर! **यत् त्वम्**=जो तू **शीतः**=सर्दी लगकर आनेवाला है, **अथो**-अथवा **रूरः** (अग्निर्वै रूरः—ता० ५.७.१०)सन्ताप करता हुआ आता है अथवा **कासा सह अवेपयः**-खाँसी के साथ हमें कम्पित कर देता है। २. हे ज्वर! **ते हेतयः**-तेरे अस्त्र **भीमाः**=भंयकर हैं। **ताभिः**-उन सब अस्त्रों से **नः**-हमें **परि वृङ्ग्धिः स्म**=छोड़ देनेवाला हो। तेरे अस्त्र हमपर प्रहार करनेवाले न हों।

भावार्थ—ज्वर हमें अपने सर्दी, गर्मी, खाँसी आदि भयंकर अस्त्रों से आहत करनेवाला न हो।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**तक्मनाशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

बलासं, कासं, उद्युगम्

मा स्मै॒तान्त्सखी॑न्कुरुथा ब॒लासं॑ का॒समु॑द्यु॒गम्।
मा स्माता॒ऽर्वाङैः पुन॒स्तत्त्वा॑ तक्म॒न्नुप॑ ब्रुवे॥ ११॥

१. हे **तक्मन्**=ज्वर! तू **बलासम्**-कफ़ को, **कासम्**-खाँसी को **उद्युगम्**-क्षय को (युगि वर्जने) **एतान्**=इन सबको **सखीन् मा स्म कुरुथाः**=मित्र मत बना। ज्वर के साथ कफ़ (बलगम), खाँसी व क्षय का उपद्रव न खड़ा हो जाए। २. **अतः अर्वाङ् मा स्म ऐः**=इसलिए तू हमारे समीप मत आ। ज्वर के साथ कितने ही उपद्रव आ खड़े होते है, अतः यह हमारे समीप नहीं आये तभी ठीक है। **पुनः**=फिर मैं **त्वा**=तुझे **तत् उपब्रुवे**=वह बात कहता हूँ कि तू हमारे समीप मत आ।

भावार्थ—ज्वर के साथ कफ़, खाँसी, क्षय आदि कितने ही उपद्रव उठ खड़े होते है, अत: ज्वर हमारे समीप न ही आये।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**तक्मनाशन:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

अरणं जनम्

तक्मन्भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।

पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम्॥ १२॥

१. हे **तक्मन्**-ज्वर! तू **भ्रात्रा बलासेन**-अपने भाई कफ़ के साथ, **स्वस्रा कासिकया सह**-बहिन के तुल्य खाँसी के साथ, **पाप्मा भ्रातृव्येण सह**-(पाप्मना) क्षय नामक पापरोग भतीजे के साथ **अमुम्**-उस **अरणम्**=अवद्य (रण शब्दे), निन्दनीय **जनम्**=मनुष्य के पास **गच्छ**=जा

भावार्थ —कफ़, खाँसी व क्षय के साथ यह ज्वर पापी को ही प्राप्त हो।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**तक्मनाशन:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

शारदं, ग्रैष्मं, वार्षिकम्

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।

तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्॥ १३॥

१. **तृतीयकम्**-तीसरे दिन आनेवाले, **वि-तृतीयम्**-तीन दिन छोड़कर आनेवाले (चौथैया) **सदन्दिम्**-(सदं, दो अवखण्डने) सदा पीड़ित करनेवाले **उत**=और **शारदम्**=शरद् ऋतु में आनेवाले **तक्मानम्**=ज्वर को **नाशय**-नष्ट कर। २. **शीतम्**=सर्दी से लगकर आनेवाले, **रूरम्**-गर्मी लगकर आनेवाले, **ग्रैष्मम्**-ग्रीष्म ऋतु में हो जानेवाले तथा **वार्षिकम्**=वर्षाऋतु में होनेवाले ज्वर को (नाशय) नष्ट कर।

भावार्थ—एक सद्वैद्य सब प्रकार के रोगों को उचित औषधोपचार से दूर कर दे।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**तक्मनाशन:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

गन्धारिभ्य:, अङ्गेभ्य:, मगधेभ्य:

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्य:।

प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि॥ १४॥

१. **इव**-जैसे **जनम्**-किसी मनुष्य को **शेवधिं प्रैष्यन्**-कोश (धन) भेजा जाता है, उसी प्रकार हम **तक्मानम्**=इस ज्वर को **गन्धारिभ्य:**=(गन्ध् हिंसने) हिंसन की वृत्तिवाले पुरुषों के लिए **परि दद्मसि**-दे डालते हैं। इस ज्वर का धन इन हिंसकों के लिए ही ठीक है। २. इसप्रकार हम इस ज्वर-धन को **मूजवद्भ्य:**-घास की अधिकतावाले स्थानों के लिए भेज देते हैं—इन स्थानों में रहनेवालों को ही यह धन प्राप्त हो। **अङ्गेभ्य:**=‘जिन्हें बहुत अधिक गति करनी पड़ती है (अगि गतौ) और परिणामत: श्रम की अति के कारण क्षीण हो जाते हैं’ उनके लिए हम इस ज्वर-धन को भेजते हैं, अन्तत: **मगधेभ्य:**-(मगं दोषं दधाति) दोषों को धारण करनेवाले मलिन-चरित्र पुरुषों के लिए हम इसे धारण करते हैं।

भावार्थ—ज्वर हिंसकों को, घास-प्रचुर स्थान में रहनेवालों को, अतिश्रम से थक जानेवालों को तथा दूषित जीवनवालों को प्राप्त होता है।

विशेष—ज्वर को समाप्त करने के लिए रोग-कृमियों का विनाश आवश्यक है। रोग-कृमियों

के विनाश से ज्वर का विनाश स्वतः ही हो जाएगा, अतः अगले सूक्त का विषय कृमियों का विनाश है। इन कृमिरूप राक्षसों का विनाशक 'इन्द्र' है। बुद्धिमत्ता से काम करने के कारण यह 'कण्व' है—मेधावी। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

क्रिमि-विनाश

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति॥ १ ॥

१. **मे**=मेरे जीवन में **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक तथा शरीररूप पृथिवीलोक **ओते**=ओत-प्रोत हो गये हैं—बुने-से गये हैं। मस्तिष्क दीप्त है तो शरीर दृढ़ (येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा)। इसीप्रकार **देवी**=जीवन को प्रकाशमय बनानेवाली **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता मेरे जीवन में **ओता**=व्याप्त हो गई है। २. इसीप्रकार **मे**=मेरे **इन्द्रः च अग्निः च**=बल व प्रकाश के देवता **ओतौ**=परस्पर बुने हुए से हो गये हैं, **इति**=यह सब इसलिए कि ये **क्रिमिं जम्भयताम्**=रोग-कृमियों को नष्ट कर दें।

भावार्थ—जीवन में हम यदि मतिष्क और शरीर दोनों का ध्यान रक्खेंगे, सरस्वती की अराधना से जीवन को प्रकाशमय बनाएँगे और बल व प्रकाश दोनों का सम्पादन करेंगे तो रोग कृमियों से आक्रान्त नहीं होंगे।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

धनपति इन्द्र

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम॥ २ ॥

१. 'इन्द्र' सूर्य का भी नाम है और यह सूर्य सब प्राणदायी धनों का स्वामी है—'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः'। हे **धनपते**=सब प्राणधनों के स्वामीन्! **इन्द्र**=सूर्य! **अस्य कुमारस्य**=इस कुमार के **क्रिमीन्**=शरीरस्थ रोग-कृमियों को **जहि**=विनष्ट कर—'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्ति निम्रोचन हन्तु रश्मिभिः'। २. **मम**=मेरे **उग्रेण वचसा**=तेजस्वी वचनों से **विश्वाः अरातयः**=सब शत्रु **हताः**=विनष्ट हो जाते हैं अथवा मुझसे प्रयुक्त की जानेवाली इस उग्र—रोग-कृमियों के लिए भयंकर—वचा औषधि से सब रोग-कृमियों का विनाश हो जाता है।

भावार्थ—सूर्य-किरणों का सेवन कृमि-विनाश के लिए सर्वोत्तम उपचार है। वचा ओषधि का प्रयोग भी कृमि-विनाश के लिए उपयोगी है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अक्ष्यौ, नासे, दतां मध्ये

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि॥ ३ ॥

१. **यः**=जो कृमि **अक्ष्यौ**=आँखों की ओर **परिसर्पति**=गतिवाला होता है—आँखों में विचरण करता है, **यः**=जो कृमि **नासे परिसर्पति**=नासा-छिद्रों में गति करता है और **यः**=जो **दतां मध्यं गच्छति**=दाँतों के बीच में गति करता है, **तं क्रिमिं जम्भयामसि**=उस कृमि का विनाश करते हैं।

भावार्थ—हम आँखों, नासिका छिद्रों व दाँतों को रुग्ण करनेवाले कृमियों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विविध कृमि

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः॥ ४॥

१. **सरूपौ द्वौ**-दो कृमि एकदम समान रूपवाले हैं—भिन्न भिन्न रोगों का कारण बनते हैं, परन्तु उनका रूप एकदम मिलता सा है। **विरूपौ द्वौ**-दो कृमि भिन्न भिन्न रूपोंवाले हैं—एक ही रोग का कारण बनते हैं, परन्तु हैं रूप में अलग-अलग। **द्वौ कृष्णौ**-दो कृष्णवर्ण कृमि हैं, **द्वौ रोहितौ** दो लाल रंग के हैं—ये विविध रोगों को उत्पन्न करते हैं, २. **बभ्रुः च बभ्रुकर्णः च** एक भूरे रंग का है और एक भूरे कानवाला है, **गृध्रः च**-एक मांस खा जाने का लोभी सा है तो **कोकः च** एक दूसरा खून को पी जानेवाला है (कुक आदाने) **ते हताः**-(सूर्य किरणों के सेवन व वचा के प्रयोग से) वे सब मारे गये हैं।

भावार्थ—संसार में विविध प्रकार के कृमि हैं, नीरोगता के लिए उन सबका विनाश आवश्यक है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शितिकक्षाः, शितिबाहवः

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः।
ये के च विश्वरूपास्तान्क्रिमीन् जम्भयामसि॥ ५॥

१. **ये**-जो **क्रिमयः** कृमि **शितिकक्षाः** श्वेत कोखवाले हैं, **ये** जो **कृष्णाः शितिबाहवः** काले व श्वेत भुजाओंवाले हैं **च** और **ये के**-जो कोई **विश्वरूपाः**-विविध रूपोंवाले हैं, **तान्** उन **क्रिमीन्**-क्रिमियों को **जम्भयामसि**-हम विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—'शितिकक्ष, शितिबाहु व विश्वरूप' सब कृमियों को विनष्ट किया जाए।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सूर्य-किरणों में

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्॥ ६॥

१. यह **सूर्यः** सूर्य **पुरस्तात्**-पूर्व दिशा से **उत् एति** उदित होता है, यह **विश्वदृष्टः** सबसे देखा गया है, अथवा यह सबको देखनेवाला है—'विश्वं दृष्टं येन'। यह **अदृष्टहा**-अदृष्ट कृमियों का भी नाश करता है। २. **दृष्टान् च अदृष्टान् च**-यह दृष्ट व अदृष्ट **सर्वान् च** सभी **क्रिमीन्** कृमियों को **घ्नन्**-नष्ट करता है, **प्रमृणन्** अपनी किरणों से उन्हें कुचल देता है।

भावार्थ—सूर्योदय होता है और यह उदित होता हुआ सूर्य विश्वदृष्ट होता हुआ दृष्ट व अदृष्ट सब कृमियों को नष्ट कर देता है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कष्कषासः शिपवित्नुकाः

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम्॥ ७॥

१. **येवाषासः**-(इण् गतौ, अज गतौ) गतिवाले व खूब ही गतिवाले कई कृमि हैं, **कष्कषासः**-(कष्=हिंसायाम्)अतिशयेन पीड़ा देनेवाले ये दूसरे कृमि हैं। **एजत्काः**=(एजृ दीप्तौ कम्पने च) कई कृमि दीप्यमान व कम्पनशील हैं, **शिपवित्नुकाः**=(शिपि-Skin, वितन् to cover, to stretch) सारी त्वचा में फैल जानेवाले कई कृमि हैं। २. ये सब **दृष्टः च** जो देखे गये हैं वे **क्रिमिः** कृमि **हन्यताम्**=मारे जाएँ **उत**=और **अदृष्टः च**=न दिखा हुआ कृमि भी मारा जाए।

भावार्थ—'तीव्र गतिवाले, बड़ी पीड़ा प्राप्त करनेवाले, चमकते हुए कम्पायमान, सारी त्वचा पर फैल जानेवाले'—ये सब दृष्ट व अदृष्ट कृमि मारे जाएँ।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'येवाष व नदनिमा' को मसल देना

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत।
सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँइव॥ ८॥

१. **क्रिमीणाम्**=कृमियों में यह **येवाषः**=बड़ी तीव्र गतिवाला कृमि **हतः**-मारा गया है, **उत** और **नदनिमा**-यह शब्द करनेवाला, चिर-चिर सी ध्वनि करनेवाला कृमि **हतः**=मारा गया है। २. मैं **सर्वान्**-सब कृमियों को **मष्मषा**=मसल मसलकर **नि अकरम्**-नष्ट कर देता हूँ, **इव**-जैसे **खल्वान्**-चणों को **दृषदा**=एक पत्थर से दल देते हैं।

भावार्थ—कृमियों को उचित औषधोपचार से ऐसे मसलकर रख दिया जाए जैसेकि पत्थर से चनों को मसल दिया जाता है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कृमि-शिरः कर्तन

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥ ९॥

१. मैं **त्रिशीर्षाणम्**=तीन सिरोंवाले, **त्रिककुदम्**=तीन ककुदों-(कुदानों)-वाले, **सारंगम्**=चित्र-विचित्र वर्णवाले, **अर्जुनम्**-श्वेत कृमि को **शृणामि**=नष्ट करता हूँ। २. **अस्य**=इस रोग-कृमि की **पृष्टिः अपि**=पसलियों को भी नष्ट करता हूँ, **च**-और **यत् शिरः**-इनका जो शिर है, उसे भी **वृश्चामि**=काट डालता हूँ।

भावार्थ—कई तीन सिरोंवाले व तीनों कुदानोंवाले कृमि हैं। इनका सिर काटडालने से इनका नाश कर देता हूँ।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अत्रि, कण्व, जमदग्नि व अगस्त्य' की भाँति

अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्॥ १०॥

१. हे **क्रिमयः**-कृमयो! **वः**-तुम्हें मैं इसप्रकार **हन्मि**=नष्ट करता हूँ **अत्रिवत्**=जैसेकि एक अत्रि—काम, क्रोध व लोभ से ऊपर उठा हुआ पुरुष नष्ट करता है (अ-त्रि), **कण्ववत्**-एक मेधावी की भाँति तुम्हें नष्ट करता हूँ और **जमदग्निवत्**=दीप्त जाठर अग्निवाले (जमत् अग्नि) पुरुष की भाँति तुम्हारा विनाश करता हूँ। काम-क्रोध व लोभ में फँसने से, नासमझी से, आहार-

विहार की गलतियों से व जाठर अग्नि के मन्द हो जाने से विविध रोग कृमियों की उत्पत्ति हो जाती है। २. **अगस्त्यस्य** (अगं स्त्यायति, संघाते) पाप का संहनन करनेवाले पुरुष के **ब्रह्मणा** ज्ञान से **अहम्**-मैं क्रिमीन् **संपिनष्मि**- कृमियों को पीस डालता हूँ—विनष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—हम 'अत्रि, कण्व, जमदग्नि व अगस्त्य' बनें और इन रोगकृमियों के शिकार न हों।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'कृमि-परिवार' विनाश

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा॥ ११॥

१. **कृमीणां राजा हतः**-कृमियों का राजा मारा गया है, **उत**-और **एषां स्थपतिः हतः** इनका स्थानपति (स्थान के बनानेवाला) कृमि भी मारा गया है। २. **हतमाता**-जिसकी माता मारी गई है, **हतभ्राता**-जिसका भाई मारा गया है, **हतस्वसा**=जिसकी बहिन मारी गई है, वह **क्रिमिः हतः**=कृमि भी मार दिया गया है।

भावार्थ—कृमियों के परिवार-के-परिवार का ही विनाश अभीष्ट है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेशसः परिवेशसः

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः॥ १२॥

१. **अस्य वेशसः हतासः**-इस कृमि के घरवाले मारे गये हैं, **परिवेशसः हतासः** इसके पड़ौसी भी मारे गये हैं। २. **अथो**=और अब **ये**=जो **क्षुल्लकाः इव**-छोटे मोटे पीस देने योग्य-से कृमि थे **ते**=वे **सर्वे कृमयः हताः**=सब कृमि मारे गये हैं।

भावार्थ—कृमियों का समूलोन्मूलन ही अभीष्ट है।

ऋषिः—**काण्वः** ॥ देवता—**इन्द्रादयः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥

सर्वेषां सर्वासाम्

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्॥ १३॥

१. **सर्वेषां च क्रिमीणाम्** सब नर कृमियों का **च**-और **सर्वासां कृमीणाम्**-सब मादा कृमियों के **शिरः**-शिर को **अश्मना भिनद्मि** पत्थर से विदीर्ण कर देता हूँ। २. **अग्निना**=अग्नि के द्वारा (तेज़ाब के प्रयोग से) इनके **मुखम् दहामि**-मुख को दग्ध कर देता हूँ।

भावार्थ—नीरोगता के लिए नर-मादा सब कृमियों का विनाश आवश्यक है।

विशेष—रोगकृमियों के विनाश से, शरीर से नीरोग, उन्नति-पथ पर चलता हुआ यह व्यक्ति 'अर्थवा' बनता है—उन्नति के शिखर पर पहुँचता है। यह 'ब्रह्म-ज्ञान व कर्म-यज्ञादि उत्तम कर्मों' को ही अपनी आत्मा समझता है, उन्हीं में तत्पर रहता है, कभी मार्गभ्रष्ट नहीं होता और प्रार्थना करता है—

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'प्रसवानाम् अधिपतिः' सविता

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १॥

१. **सविता**-सबको प्रेरणा देनेवाला प्रभु **प्रसवानाम् अधिपतिः**=सब प्रेरणाओं का स्वामी है—वही सबको प्रेरणा देता है—चेताता है। **सः मा अवतु**=वह मेरा रक्षण करे। **अस्मिन्**=इस **ब्रह्मणि**-ज्ञान-प्राप्ति के कर्म में, **अस्मिन् कर्मणि**=इस यज्ञादि कर्म में, **अस्यां पुरोधायाम्**-इस पौरोहित्य में—पुरोहित-कर्म के सम्पादन में, **अस्यां प्रतिष्ठायाम्**=इस प्रतिष्ठा में—शान्तस्थिति में (tranquility, repose), **अस्यां चित्त्याम्**=इस आत्मस्वरूप की स्मृति में, **अस्यां आकूत्याम्**=इस संकल्प में **अस्याम् आशिषि**-इस आशीः—शुभेच्छा में, **अस्यां देव-हूत्याम्**=इस देवों की प्रार्थना में (हूति आह्वान) **स्वाहा**=(स्वा आ हा) मैं अपना अर्पण करता हूँ। इसप्रकार जीवन-यापन करता हुआ मैं प्रभु रक्षणीय होऊँ।

भावार्थ—वह प्रेरक प्रभु सब प्रेरणाओं का स्वामी है। मैं उसकी प्रेरणाओं को सुनूँ और उन्हें कार्यान्वित करूँ। प्रभु से रक्षित हुआ-हुआ मैं 'ज्ञान-प्राप्ति, यज्ञादिकर्म, पौरोहित्य, शान्तस्थिति, आत्मस्वरूप की स्मृति, उत्तम संकल्प, उत्तमेच्छा व देवों की प्रार्थना' में अपना अर्पण करता हूँ, इन कर्मों में प्रवृत्त हुआ-हुआ जीवन-यज्ञ में आगे बढ़ता हूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'वनस्पतीनाम् अधिपतिः' अग्नि

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ २॥

१. **अग्निः**=पृथिवी का मुख्य देवता अग्नि **वनस्पतीनाम्**=सब वनस्पतियों का **अधिपतिः**=स्वामी है। भूमि में इस अग्नि की उष्णता न होने पर किसी भी वनस्पति का प्ररोहण सम्भव नहीं है। **सः**=वह अग्नि **मा अवतु**=मेरा रक्षण करे। शरीर के स्वास्थ्य के लिए उचित मात्रा में अग्नितत्त्व का होना आवश्यक है। इसके अभाव में शरीर शान्त ही हो जाता है। २. इसके रक्षित होने पर मैं ज्ञान-प्राप्ति आदि कर्मों में अपना अर्पण करूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वनस्पतियों का अधिपति अग्नि मेरा रक्षण करे। मैं इन वनस्पतियों का ही सेवन करनेवाला बनूँ। उस अग्नि से रक्षित होकर मैं ज्ञानादि कर्मों में अपना अर्पण करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'दातॄणाम् अधिपत्नी' द्यावापृथिवी

द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावताम्।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ ३॥

१. **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **दातॄणाम् अधिपत्नी**=दाताओं के अधिपति हैं।

सबसे मुख्य दाता ये द्यावापृथिवी ही हैं। द्युलोक पिता है तो पृथिवीलोक माता। ये हम सब पुत्रों के लिए आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। ये ही हमें खान पान आदि के लिए सब वस्तुओं को सुलभ कराते हैं। २. **ते**-वे द्यावापृथिवी **मा** मेरा **अवताम्**-रक्षण करें। ये तो हमारे पिता माता हैं, रक्षण क्यों न करेंगे? इनसे रक्षित होकर मैं ज्ञान प्राप्ति आदि उत्तम कर्मों में लगा रहूँ। शेष पूर्ववत्।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'अपाम् अधिपतिः' वरुणः

वरुणोऽ पामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥

१. **वरुणः** सब कष्टों का निवारण करनेवाला प्रभु **अपाम्**-जलों का **अधिपतिः** स्वामी है। उसने इन जलों का निर्माण करके हमारे कष्टों व रोगों के निवारण की व्यवस्था की है। ये जल 'वारि' हैं—रोगों का निवारण करनेवाले, 'भेषजम्'-औषध हैं, 'अमृतम्' नीरोगता देनेवाले हैं। इनमें उस वरुण ने सब रोगों के औषधों को स्थापित किया है। २. **सः मा अवतु** वे वरुण मेरा रक्षण करें। जलों का समुचित प्रयोग करता हुआ मैं नीरोग बनकर ज्ञानादि कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वरुण प्रभु ने रोग निवारण के लिए इन जलों को हमें प्राप्त कराया है। इनका ठीक प्रयोग हमें स्वस्थ बनाये। स्वस्थ रहकर हम ज्ञानादि प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'वृष्ट्यधिपती' मित्रावरुणौ

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम्।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ५ ॥

१. **मित्रावरुणौ** मित्र और वरुण (उद्रजन और अम्लजन नामक वायुएँ) **वृष्ट्या** (वृष्ट्याः) वृष्टि के **अधिपती** स्वामी हैं। ये वृष्टिजल के रूप में हमें 'अमृत' प्राप्त कराते हैं। यह वृष्टि अन्नोत्पादन में मुख्य साधन बनकर हमारा रक्षण करती है। २. **तौ**-मित्र और वरुण इस वृष्टि जल को समय पर प्राप्त कराने के द्वारा **मा अवताम्**-मेरा रक्षण करें, 'अतिवृष्टि व अनावृष्टि' रूप आधिदैविक आपत्तियों से हमें बचाएँ। इनसे सुरक्षित हुए-हुए हम ज्ञानादि कार्यों में प्रवृत्त हों। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—मित्र और वरुण द्वारा प्राप्त कराई गई वृष्टि अन्नों को उत्पन्न करती हुई दुर्भिक्ष के कष्ट से हमें बचाये। इसप्रकार से रक्षित हुए हुए हम उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'पर्वतानाम् अधिपतयः' मरुतः

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥

१. **मरुतः**-शरीरस्थ प्राण **पर्वतानाम्**=(पर्व पूरणे) सब न्यूनताओं को दूर करके सब पूरणों के **अधिपतयः**=स्वामी हैं। इन प्राणों की साधना (प्राणायाम) के द्वारा मैं अपनी सब न्यूनताओं को दूर करूँ। २. **ते**=वे प्राण **मा अवन्तु**-मेरा रक्षण करें। प्राणसाधना से 'शरीर में स्वस्थ, मन में निर्मल व बुद्धि में दीप्त' बनकर मैं ज्ञान प्राप्ति आदि उत्तम कर्मों में लगा रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्राणसाधना सब न्यूनताओं को दूर करती हुई व हमारा पूरण करती हुई हमें रक्षित करे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'वीरुधामधिपतिः' सोमः

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ७ ॥

१. गतमन्त्र में वर्णित प्राणसाधना से शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ **सोमः**-वीर्य **वीरुधाम्** सब विरोहणों—उन्नतियों का **अधिपतिः**=स्वामी है। सोम-रक्षण से ही 'शरीर के रोग, मन के राग-द्वेष व बुद्धि की कुण्ठता' दूर होती हैं। २. शरीर में सुरक्षित **सः** वह सोम **मा अवतु**=मेरा रक्षण करे। हम सोम का रक्षण करते हैं, सोम हमारा रक्षण करता है। सोम से सुरक्षित मैं ज्ञान आदि की प्राप्ति में प्रवृत्त होऊँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा मैं सोम का शरीर में रक्षण करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वायुः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'अन्तरिक्षस्याधिपतिः' वायुः

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

१. **वायुः**=वायु **अन्तरिक्षस्य**=अन्तरिक्ष का **अधिपतिः**=स्वामी है। अन्तरिक्ष का मुख्य देवता वायु ही है। मैं खुले में रहता हुआ सदा इसका सेवन करूँ। **सः**=वह वायु **मा अवतु**-मेरा रक्षण करे। वायु के घट में अमृत का कोश है। हम शुद्ध वायु का सेवन करेंगे तो इस अमृत को क्यों न प्राप्त करेंगे? २. शरीर में वह वायु हृदय अन्तरिक्ष में रहता है। हृदयान्तरिक्ष में वायु के रहने का भाव यह है कि हम सदा वायु की भाँति क्रियाशील बनें। यह क्रियाशीलता ही सब बुराइयों का गन्धन(हिंसन)करेगी। उत्तम वृत्तिवाले बनकर हम ज्ञानादि कर्मों में ही प्रवृत्त रहेंगे। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम शुद्ध वायु का सेवन करें और वायु से क्रियाशीलता का पाठ पढ़ें। यह क्रियाशीलता हमें सब बुराइयों से बचाएगी।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'चक्षुषाम् अधिपतिः' सूर्यः

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ९ ॥

१. **सूर्यः** सूर्य **चक्षुषाम् अधिपतिः**-नेत्रों का अधिपति है। वस्तुतः सूर्य ही चक्षु का रूप धारण करके आँखों में निवास करता है—'सूर्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्'—ऐत० उप०। प्रातः-सायं सूर्याभिमुख होकर ध्यान का विधान इसीलिए है कि हम ध्यान करेंगे और सूर्य हमारी आँखों की शक्ति का वर्धन करेगा। २. **सः**-वह सूर्य **मा अवतु**-मेरा रक्षण करे। सूर्य-किरणों का सेवन सब रोगकृमियों का संहारक है—'**उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्ति निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः**'। सूर्य किरणों द्वारा हमारे शरीर में सब प्राणदायी तत्त्वों की स्थापना होती है। '**प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः**' इसप्रकार सूर्य सम्पर्क में स्वस्थ बनकर मैं ज्ञानादि कर्मों में अपना अर्पण करूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—सूर्य-किरणों का सेवन हमें स्वस्थ व चक्षुशक्ति-सम्पन्न बनाए। ऐसे बनकर हम ज्ञान-प्राप्ति आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**चन्द्रमाः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'नक्षत्राणाम् अधिपतिः' चन्द्रमा

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १०॥

१. **चन्द्रमाः**-चन्द्र **नक्षत्राणाम् अधिपतिः**=(नक्ष-गतौ) आकाशस्थ गतिशील तारकाओं का स्वामी है। यह चन्द्र मन बनकर हमारे हृदयों में प्रवेश करता है। 'चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्' (ऐत०) और हमें उपदेश करता है कि 'तुम सदा गतिशील होते हुए प्रसन्न मनवाले बनो (चदि आह्लादे)। संसार में वृद्धि-क्षय तो आते ही रहते हैं, उदासीन नहीं होना। २. **सः** वह चन्द्रमा **मा**-गतिशीलता का उपदेश करता हुआ मुझे **अवतु**-रक्षित करे। गतिशीलता व प्रसन्न मनस्कता को अपनाकर मैं यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—मैं चन्द्र से गतिशीलता व प्रसन्न मनस्कता का पाठ पढ़कर उत्तम कार्यों में लगा रहूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'दिवः अधिपतिः' इन्द्रः

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ ११॥

१. **इन्द्रः**=विद्युत् **दिवः**-(दिवु व्यवहारे) सब व्यवहारों की **अधिपतिः**=स्वामिनी है। विद्युत् से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं। सम्पूर्ण यन्त्रसमूह का इसके द्वारा परिचालन होता है। हम भी विद्युत् की भाँति शीघ्रता से—अनालस्य से कार्यों को करनेवाले बनें। २. **सः**-वह विद्युत् शीघ्रता से कार्य करने का उपदेश करती हुई **मा अवतु**-मेरा रक्षण करे। इससे रक्षित हुआ-हुआ मैं ज्ञान आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—विद्युत् से हम शीघ्र कार्यकारित्व का पाठ पढ़ें। हममें आलस्य व दीर्घसूत्रता न हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतां पिता** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'पशूनाम् अधिपतिः' मरुतां पिता

**मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १२॥**

१. **मरुताम्**=(हिरण्यनाम—नि० १.२) हिरण्यादि धनों का **पिता**=रक्षक, लक्ष्मीपति प्रभु **पशूनाम्**=सब जीवों का **अधिपतिः**=स्वामी है। प्रभु हिरण्यादि धनों को देकर हमारा रक्षण करते हैं। २. **सः**=वह हिरण्य का स्वामी प्रभु **मा**=हिरण्य को प्राप्त कराता हुआ मुझे **अवतु**=रक्षित करे। निर्धनता के कष्ट से ऊपर उठता हुआ मैं ज्ञान-प्राप्ति आदि कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ही सब हिरण्यों के रक्षक हैं। इन हिरण्यों को देकर वे हमारा पालन करते हैं। हम धनों को प्रभु से दिया हुआ जानें और उनका सद् व्यय करते हुए उत्तम कार्यों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'प्रजानाम् अधिपतिः' मृत्युः

**मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १३॥**

१. **मृत्युः**=मृत्यु **प्रजानाम् अधिपतिः**=सब प्रजाओं का स्वामी है। कोई भी व्यक्ति इस मृत्यु से बच नहीं सकता। २. मैं सदा इस मृत्यु का स्मरण करूँ। यह मृत्यु-स्मरण मुझे विषयासक्ति से बचाता है व मार्ग-भ्रष्ट नहीं होने देता। इसप्रकार **सः**=वह मृत्यु **मा**=मुझे **अवतु**=रक्षित करे—मार्ग-भ्रष्ट होने से बचाए। मैं सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—मृत्यु-स्मरण से मार्ग-भ्रष्ट न होता हुआ मैं सदा सत्पथ का आक्रमण करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

'पितृणाम् अधिपतिः' यमः

**यमः पितृणामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १४॥**

१. **यमः**=नियन्त्रण में चलानेवाला आचार्य **पितृणाम् अधिपतिः**=पितरों का स्वामी है। सर्वोत्तम पिता आचार्य है जो हमें धर्म-मार्ग के व्यतिक्रम से बचाता है। **सः**=वह नियन्ता आचार्य **मा अवतु**=मेरा रक्षण करे। आचार्य के गर्भ में सुरक्षित हुआ-हुआ मैं विषयों के आक्रमण से बचा रहूँ और ज्ञानादि कर्मों में प्रवृत्त रहूँ। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—आचार्य के नियन्त्रण में मेरे जीवन का उपक्रम हो। आचार्य द्वारा परिपक्व बुद्धि बनाया जाकर मैं संसार में पदार्पण करूँ और सदा उत्तम कार्यों में ही प्रवृत्त रहूँ।

ऋषि:—**अथर्वा** ॥ देवता—**पितर:** ॥ छन्द:—**अतिशक्वरी** ॥

'पिता, पितामह व प्रपितामह' का श्राद्ध

पितरः परे ते मावन्तु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १५॥

१. इस संसार-यात्रा में **ते** वे **परे पितरः**-उत्कृष्ट जीवनवाले—मुझसे पहले संसार में आनेवाले 'पिता, पितामह व प्रपितामह' **मा अवन्तु**-सदा उत्तम प्रेरणाओं द्वारा मेरा रक्षण करें। २. इन पितरों से उत्तम प्रेरणाओं को प्राप्त करके हम सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हमें सदा अपने बड़ों—'पिता, पितामह व प्रपितामह' से उत्तम प्रेरणा प्राप्त होती रहे। यह प्रेरणा हमें सत्पथ पर ले जानेवाली हो। इनकी प्रेरणाओं का सुनना ही इनका सच्चा श्राद्ध है।

ऋषि:—**अथर्वा** ॥ देवता—**तताः** ॥ छन्द:—**अतिशक्वरी** ॥

ते अवरे तताः

तता अवरे ते मावन्तु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १६॥

१. **ते** वे **अवरे** हमसे पिछले काल में आनेवाले **तताः** सन्तान (तन्यते, अथवा तनोति कुलम्) भी **मा अवन्तु**-मेरी रक्षा करें। 'मेरे पथभ्रंश का सन्तानों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा तब वे मेरा क्या आदर करेंगी?' यह विचार ही हमें पथभ्रष्ट होने से रक्षित करता है। २. एवं, इन सूनुओं (Sons) से भी उत्तम प्रेरणा प्राप्त करके (षू प्रेरणे) हम उत्तम मार्ग पर ही आगे बढ़ें। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—पुत्र भी हमें जीवन की उत्तमता के लिए प्रेरणा देनेवाले हों।

ऋषि:—**अथर्वा** ॥ देवता—**ततामहाः** ॥ छन्द:—**विराट्शक्वरी** ॥

ततामहाः

ततस्ततामहास्ते मावन्तु।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ १७॥

१. **ततः** तब—उसके पश्चात् **ते** वे **ततामहाः**-मेरे पौत्र भी **मा अवन्तु**-मेरा रक्षण करें। 'मेरे सच्चरित्र से उन्हें अपने कुल के गौरव का अनुभव होगा' यह सोचकर मैं कभी पथ भ्रष्ट नहीं होऊगाँ। २. पौत्रों व प्रपौत्रों में यश का विचार मुझे उज्ज्वल चरित्रवाला बनाएगा। इसप्रकार मैं उत्तम कर्मों में ही अपना अर्पण करूँगा। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—पौत्रों व प्रपौत्रों में कुल के गौरव को अनुभव कराने की भावना मुझे सत्कर्म में प्रवृत्त करती है।

विशेष—इसप्रकार उत्तम कर्म से डाँवाडोल न होता हुआ यह अथर्वा (न थर्वति) 'ब्रह्मा' बनता है—सर्वोन्नत। अगले सूक्त का द्रष्टा यह ब्रह्मा ही है।

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पर्वतात् दिवः, अङ्गात् अङ्गात्

पर्वताद्दिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत्॥ १ ॥

१. **पर्वतात्**=मेरु पर्वत—मेरुदण्ड—रीढ़ की हड्डी से **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक से **योनेः**=शरीर के **अङ्गात् अङ्गात्**=एक-एक अङ्ग से **समाभृतम्**=सम्यक् आभृत किये हुए **शेपः**=वीर्य-सामर्थ्य को, शरीर को शेप (आकार) देनेवाले वीर्य को **गर्भस्य रेतोधाः**=गर्भ के मूलभूत बीज का स्थापन करनेवाला पुरुष **आदधत्**=गर्भाशय में इसप्रकार आहित करता है, **इव**=जैसेकि **सरौ पर्णम्**-तीर में पङ्ख को स्थापित करते हैं। पङ्ख के आधान से तीर की गति तीव्र हो जाती है। इसीप्रकार वीर्य के आधान से गर्भाश्य में शरीर-निर्माण की गति आरम्भ हो जाती है।

भावार्थ—पुरुष के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से समाभृत वीर्य सन्तान के शरीर का निर्माण करता है। इसी से सन्तान माता-पिता के अनुरूप आकृति व स्वभाववाली बनती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

गर्भधारिका पत्नी का रक्षक पति

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे॥ २ ॥

१. पत्नी पति से कहती है—**यथा**=जैसे **इयम्**=यह **मही पृथिवी**-महनीय भूमि **भूतानाम्**-सब प्राणियों के **गर्भम्**=गर्भ को **आदधे**-धारण करती है। **एव**=इसीप्रकार मैं **ते**-तेरे **गर्भम्**-गर्भ को **दधामि**=धारण कर रही हूँ। २. **तस्मै अवसे**-उस गर्भ के रक्षण के लिए **त्वाम् हुवे**-तुझे पुकारती हूँ। गर्भरक्षण व पोषण के लिए जो भी आवश्यक साधन हैं, उन्हें जुटाने के लिए मैं आपसे कहती हूँ।

भावार्थ—पत्नी जब गर्भधारण करती है तब पति को उसके रक्षण के सब साधनों को जुटाना ही चाहिए।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सिनीवाली सरस्वती

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा॥ ३ ॥

१. पति उत्तर देता है—हे **सिनीवालि**=प्रशस्त अन्नोवाली (सिनम्=अन्नम्—नि० ११.३१)! तू **गर्भं धेहि**=गर्भ धारण कर। यदि तेरा भोजन प्रशस्त होगा तभी गर्भस्थ बालक का धारण हो सकेगा। तेरे द्वारा खाया गया अन्न ही गर्भस्थ बालक के शरीर व मन के स्वास्थ्य का साधन बनेगा। २. हे **सरस्वति**=ज्ञान की आराधिके! तू **गर्भं धेहि**-गर्भ को धारण कर। तेरी ज्ञान की आराधना गर्भस्थ बालक को भी ज्ञान-रुचिवाला बनाएगी। ३. **उभा**=दोनों **पुष्करस्रजा**-पोषण का निर्माण करनेवाले अथवा हृदय कमल का निर्माण करनेवाले **अश्विना**=प्राणापान ते **गर्भं धत्ताम्**=तेरे गर्भ का धारण करें, अर्थात् तेरे द्वारा किया गया प्राणायाम गर्भस्थ बालक का ठीक से पोषण करेगा और उसके हृदय को विषय-जलों से कमलवत् अलिप्त बनाएगा।

भावार्थ—बालक के गर्भस्थ होने पर माता द्वारा प्रशस्त अन्न का सेवन बालक को स्वस्थ

शरीर व स्वस्थ मनवाला बनाएगा। माता से की गई ज्ञान की अराधना उसे ज्ञान रुचिवाला बनाएगी और माता द्वारा किया गया प्राणायाम उसे प्रशस्त हृदय कमलवाला बनाएगा तथा उसका उचित पोषण करेगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते॥ ४॥

१. **ते गर्भम्**-तेरे गर्भ को **मित्रावरुणौ**=मित्र और वरुण धारण करें, अर्थात् तू इस समय स्नेह व निर्द्वेषता की वृत्तिवाली बन। तब बालक भी इन्हीं वृत्तियोंवाला होगा। **देवः** प्रकाशमय जीवनवाला **बृहस्पतिः** ब्रह्मणस्पति **गर्भम्**-तेरे गर्भ को धारण करे। तू देववृत्ति की तथा ज्ञान रुचितावाली बन तब बालक भी देववृत्ति व ज्ञान-रुचिता को लिये हुए होगा। २. **इन्द्रः च अग्निः च** बल व प्रकाश के देव **ते**-तेरे **गर्भम्**=गर्भ को धारण करें। तू बल व प्रकाश का सम्पादन करने की इच्छा व यत्न कर, तब सन्तान भी ऐसी ही होगी। **धाता**=वह सबका धारक प्रभु **ते गर्भं दधातु** तेरे गर्भ को धारण करे। पति कहता है कि मुझे क्या रक्षण करना, प्रभु ही रक्षा करेंगे। तू भी धारणात्मक वृत्तिवाली बनना। गर्भस्थ बालक भी इसी वृत्ति को लेकर जन्म लेगा।

भावार्थ—गर्भधारण करनेवाली माता 'स्नेह, निर्द्वेषता, दिव्यता, ज्ञान, बल, प्रकाश व धारणात्मक वृत्ति' को धारण करे तब बालक भी इन्हीं वृत्तियों को लेकर उत्पन्न होगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विष्णु, त्वष्टा, प्रजापति, धाता

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥ ५॥

१. **विष्णुः** वह सर्वव्यापक परमात्मा **योनिम्**-इस गर्भ के आश्रयभूत शरीर को **कल्पयतु** शक्तिशाली बनाए। गर्भिणी माता अपनी मनोवृत्तियों को संकुचित न होने दे। विशाल हृदयता गर्भ को भी शक्तिशाली बनाएगी। **त्वष्टा**=वह सर्वनिर्माता प्रभु **रूपाणि** रूपों को **पिंशतु**-अलंकृत करे, एक एक अवयव को जोड़कर इस शरीर को सुन्दर बनाए। गर्भिणी निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त रहेगी तो गर्भस्थ बालक का रूप बड़ा सुन्दर होगा। २. **प्रजातिः आसिञ्चतु**-प्रजाओं का रक्षक प्रभु इस गर्भ को शक्ति से सिक्त करे। गर्भिणी माता में रक्षण की प्रवृत्ति गर्भस्थ बालक को शक्ति देगी और अन्ततः **धाता**-वह धारक प्रभु **ते गर्भं दधातु**-तेरे गर्भ का धारण करे। गर्भिणी की धारणात्मक प्रवृत्ति गर्भ का भी धारण करेगी।

भावार्थ—गर्भस्थ बालक का ठीक निर्माण 'विष्णु, त्वष्टा, प्रजापति व धाता' नामवाले प्रभु ही करते हैं। गर्भिणी को भी 'विशालहृदयता, निर्माण, रक्षण व धारण' की वृत्तियों को अपनाना है, तभी सुन्दर सन्तान का निर्माण होगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वरणीय पति, दिव्य गुणोंवाली समझदार पत्नी, चतुर वैद्य

यद्वेद राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती। यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब॥ ६॥

१. **यत्**-जिसे **राजा**-नियमित (regulated) जीवनवाला **वरुणः**=वरणीय पति **वेद**-जानता है **वा** और **यत्**-जिसे **देवी**=उत्तम व्यवहारोंवाली **सरस्वती**-समझदार पत्नी (वेद) जानती है।

यत्=जिसे **वृत्रहा**=रोगकृमियों का नाशक **इन्द्रः**=रोगरूप शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला वैद्य **वेद**=जानता है, **तत्**=उस **गर्भकरणम्**=गर्भ की स्थापक औषध को **पिब**=तू पी।

भावार्थ—पति का मुख्य गुण 'व्यवस्थित, पाप-निवृत्त (वरुण) जीवन' है। पत्नी को उत्तम व्यवहारोंवाली व समझदार बनना है। वैद्य औषधविज्ञान में चतुर होकर गर्भ के नाशक कृमियों को विनष्ट करता हुआ 'गर्भकरण' औषध पिलाये।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गर्भस्थिति में अग्नितत्त्व का महत्त्व

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॒ वन॒स्पती॑नाम्।
गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्य॒ सो अ॑ग्ने॒ गर्भ॑मे॒ह धाः॑॥ ७॥

१. हे **अग्ने**=तेजस्विन् प्रभो ! आप **ओषधीनां गर्भः असि**=फलपाकान्त सब ओषधियों के गर्भ हैं। सब ओषधियों में अग्नितत्त्व के रूप में प्रभु का निवास है। **वनस्पतीनाम्**=वनस्पतियों के आप **गर्भः**=गर्भ हैं। वनस्पतियों में भी अग्निरूप से प्रभु विद्यमान हैं। **विश्वस्य भूतस्य**=सब भूतों के **गर्भः**=आप गर्भ हैं—सब प्राणियों में अग्नितत्त्व की स्थिति है। यही उनके जीवन का कारण है। २. हे अग्ने! तू **सः**=वह **इह**=इस 'देवी सरस्वती' में **गर्भं आधाः**=गर्भ का धारण कर। माता में उचित अग्नितत्त्व होने पर ही गर्भ की स्थिति होती है, निर्बला स्त्री में गर्भ की स्थिति नहीं हो पाती।

भावार्थ—ओषधियों, वनस्पतियों व सब भूतों में अग्नितत्त्व की स्थिति है। माता में भी यह अग्नितत्त्व ही गर्भ का धारण करता है, निर्बला स्त्री के शरीर में गर्भ स्थिर नहीं हो पाता।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

केवल प्रजा के लिए

अधि॑ स्कन्द वी॒रय॑स्व॒ गर्भ॒मा धे॑हि॒ योन्या॑म्।
वृषा॑सि वृष्ण्यावन्प्र॒जायै॒ त्वा न॑यामसि॥ ८॥

१. हे **वृष्ण्यावन्**=शक्तिशाली पुरुष! तू **अधिस्कन्द**=अपने क्षेत्र (पत्नी) की ओर गतिवाला हो। **वीरयस्व**=वीरतापूर्ण कर्म करनेवाला हो। **योन्याम्**=योनी में **गर्भम् आधेहि**=गर्भ की स्थापना कर। २. **वृषा असि**=तू सेचन में समर्थ है। हे शक्तिशाली! **त्वा**=तुझे **प्रजायै**=सन्तानोत्पादन के लिए ही **नयामसि**=पत्नी के समीप प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—पति के द्वारा पत्नी के शरीर में वीर्यसेचन केवल सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से ही हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

बार्हत् सामे

वि जि॑हीष्व बार्हत्सामे॒ गर्भ॑स्ते॒ योनि॒मा श॑याम्।
अदु॑ष्टे दे॒वाः पु॒त्रं सो॑मपा उ॑भया॒विन॑म्॥ ९॥

१. स्त्री का ज्ञानवृत्तिवाला होना आवश्यक है, अतः उसे 'बार्हत्सामे' इस रूप में सम्बोधित करते हैं। हे **बार्हत्सामे**=खूब ही ज्ञानवृत्तिवाली स्त्रि! तू **विजिहीष्व**=विशेषरूप से प्रयत्न कर। **गर्भः**=गर्भ **ते**=तेरी **योनिम् आशयाम्**=योनि में शयन कर रहा है। बालक के गर्भस्थ होने पर माता को ज्ञानवृत्तिवाला व क्रियाशील जीवनवाला बनना चाहिए, तभी गर्भस्थ बालक मन में शान्त, शरीर में पूर्ण स्वस्थ व क्रियाशील बन पाएगा। २. **सोमपाः**=सोम (वीर्य) का रक्षण

करनेवाले **देवाः** सब दिव्यभाव **ते**-तुझे **उभयाविनम्**-शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में ज्ञानवाले 'उभयावी' **पुत्रम्**-सन्तान को **अदुः**-देते हैं। बालक के गर्भस्थ होने पर संयमी जीवन सन्तान को 'उभयावी' बनाता है।

भावार्थ—गर्भ-धारण करनेवाली माता शान्तवृत्ति की हो। वह संयत जीवनवाली होकर सोम का रक्षण करे। इससे सन्तान 'शक्ति व ज्ञान' दोनों से परिपूर्ण होगी।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः** ॥ छन्दः—**१०-१२ अनुष्टुप्, १३ विराट्पुरस्ताद्बृहती** ॥

पुमांसं पुत्रम्

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥ १०॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥ ११॥

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥ १२॥

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥ १३॥

१. हे **धातः** सबका धारण करनेवाले! **त्वष्टः**-सबके निर्मातः—विश्वकर्मन् प्रभो! हे **सवितः** सबको जन्म देनेवाले! **प्रजापते**-प्रजाओं के रक्षक प्रभो! **श्रेष्ठेन रूपेण** सर्वोत्तम रूप के साथ **अस्याः नार्याः** इस नारी की **गवीन्योः**-गर्भधारक दोनों पार्श्वस्थ नाड़ियों में **पुमांसम्**-अपने जीवन को पवित्र बनानेवाले वीर (नकि नामर्द) **पुत्रम्**-सन्तान को **दशमे मासि सूतवे**-दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए **आधेहि** सम्यक् स्थापित कीजिए। २. प्रभु ही सबका धारण करते हैं। वे ही सबके निर्माता हैं, वे जन्म देनेवाले (व प्रेरित करनेवाले) प्रभु प्रजाओं के रक्षक हैं।

भावार्थ—बालक के गर्भस्थ होने पर उस 'धाता, त्वष्टा, सविता, प्रजापति' प्रभु का स्मरण करनेवाली नारी ठीक समय पर पवित्र, वीर सन्तान को जन्म देती है।

विशेष—अगले सूक्त का ऋषि भी 'ब्रह्मा' ही है। यह उत्तम सन्तान यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होती है।

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् [एकावसाना]** ॥

यजूंषि समिधः (यज्ञ+ज्ञान)

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु॥ १॥

१. **यज्ञे**-इस जीवन यज्ञ में **यजूंषि**-'देवपूजा-संगतिकरण-दान' रूप यज्ञ तथा **समिधः** ज्ञानदीप्तियाँ **स्वाहा**-सम्यक् आहुत हों, अर्थात् जीवन को हम यज्ञ समझें और यहाँ यज्ञों तथा ज्ञान दीप्तियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। २. वह **अग्निः** अग्रणी **प्रविद्वान्**-प्रकृष्ट ज्ञानी प्रभु हमें **इह**-इसी 'यज्ञ तथा ज्ञान दीप्ति' में **युनक्तु**-लगाये। प्रभुकृपा से हमारे हाथों से यज्ञों का प्रवर्तन हो और मस्तिष्क को हम ज्ञान-दीप्त बनाएँ।

भावार्थ—हमारा जीवन यज्ञमय हो और स्वाध्याय के द्वारा हम ज्ञानदीप्त बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]** ॥

ध्यान+प्रभुपूजन

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन्यज्ञे महिषः स्वाहा॥ २॥

१. वह **सविता देवः**=सबका प्रेरक, दिव्य गुणों का पुञ्ज प्रभु **प्रजानन्**=हमारी स्थिति को ठीक-ठीक जानता हुआ **युनक्तु**-हमें योगयुक्त करे—समाहित करे। २. **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन यज्ञ में **महिषः**=वह पूजनीय प्रभु ही **स्वाहा**=अर्पणीय है। हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करके जीवन-यज्ञ को सुन्दर बनाएँ।

भावार्थ—हमारा जीवन ध्यान तथा प्रभुपूजनवाला हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री [एकावसाना]**॥

उक्थामदानि [स्तोत्रों का आनन्द]

इन्द्र॑ उ॒क्था॒म॒दान्य॒स्मिन्य॒ज्ञे प्र॑वि॒द्वान्यु॑नक्तु सु॒यु॒जः॒ स्वाहा॑॥ ३ ॥

१. **अस्मिन् यज्ञे**-इस जीवन-यज्ञ में वह **इन्द्रः**=कामदि शत्रुओं का विद्रावक **प्रविद्वान्**=प्रकृष्ट ज्ञानी **सुयुजः**=उत्तम कर्मों में लगानेवाला प्रभु **उक्थामदानि**-स्तोत्रों के आनन्दों को **युनक्तु**-हमारे साथ जोड़े। **स्वाहा**=हम उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तोत्रों में आनन्द लेते हुए प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**निविदः** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]**॥

प्रैषाः निविदः

प्रै॒षा य॒ज्ञे नि॒वि॒दः॒ स्वाहा॑ शि॒ष्टाः पत्नी॑भिर्वहते॒ह यु॒क्ताः ॥ ४ ॥

१. **यज्ञे**-जीवन-यज्ञ में **प्रैषाः**=प्रभु-प्रेरणाएँ तथा **निविदः**=निश्चयात्मक ज्ञान (Instructions) **स्वाहा**-(सु+आह) सम्यक् उच्चरित होती हैं। हम प्रभु-प्रेरणाओं के अनुसार जीवन बनाने का यत्न करते हैं और प्रभु से दिये गये ज्ञानों को प्राप्त करते हैं। २. **शिष्टाः**=प्रभु के अनुशासन में चलते हुए तुम **इह**=जीवन यज्ञ में **युक्ताः**=ध्यानावस्थित हुए-हुए अथवा अप्रमत्त हुए हुए **पत्नीभिः**=पत्नियों के साथ **वहत**=कर्त्तव्यकर्मों का वहन करो।

भावार्थ—प्रभु की प्रेरणाओं व ज्ञानों को ध्यान से सुनते हुए प्रभु के अनुशासन में हम पत्नियों के साथ कर्त्तव्यकर्मों का वहन करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् [एकावसाना]**॥

ज्ञान, प्राणायाम [छन्दांसि, मरुतः]

छन्दां॑सि य॒ज्ञे म॑रु॒तः॒ स्वाहा॑ मा॒तेव॑ पु॒त्रं पि॑पृते॒ह यु॒क्ताः ॥ ५ ॥

१. **यज्ञे**-इस जीवन यज्ञ में **छन्दांसि**=वेदमन्त्र—ज्ञान की वाणियाँ तथा **मरुतः**-प्राण **स्वाहा**=सुहुत हों। मैं ज्ञान व प्राणसाधना के प्रति अपने को अर्पण करनेवाला बनूँ। **इह**=इस जीवन-यज्ञ में **युक्ताः**-अप्रमत्त हुए-हुए तुम **पिपृत**=अपना इसीप्रकार पूरण करो **इव**=जैसेकि **माता पुत्रम्**=माता पुत्र का पालन व पूरण करती है।

भावार्थ—इस जीवन-यज्ञ में हम अपने को ज्ञान-प्राप्ति व प्राणसाधना में लगाएँ, अप्रमत्त होकर अपना पालन व पूरण करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अदितिः** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]**॥

अदिति

एयम॑ग॒न्ब॒र्हिषा॑ प्रो॒क्षणी॑भिर्य॒ज्ञं त॒न्वा॒नादि॑ति॒ः स्वाहा॑॥ ६ ॥

१. **इयम् अदितिः**=यह (अ+दिति) स्वास्थ्य की देवता **आ अगन्**-हमें प्राप्त हुई है। **बर्हिषा**-वासनाओं को जिसमें से उखाड़ दिया गया है, उस हृदय के साथ तथा **प्रोक्षणीभिः**-(उक्ष

सेचने) शरीर में शक्तियों के सेचन के साथ **यज्ञं तन्वाना**=यज्ञों का यह विस्तार कर रही है, **स्वाहा**=मैं इस अदिति के प्रति अपना अर्पण करूँ।

भावार्थ—हम स्वस्थ बनकर पवित्र हृदय व शक्ति के रक्षण के साथ यज्ञों का विस्तार करें, इन्हीं के प्रति अपना अर्पण करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]**॥

तपांसि

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा॥ ७॥

१. **सुयुजः**=हमें उत्तम कर्मों में लगानेवाला **विष्णुः**=वह सर्वव्यापक प्रभु **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन-यज्ञ में **बहुधा**=बहुत प्रकार से **तपांसि युनक्तु**=तपों को हमारे साथ जोड़े। **स्वाहा**=हम उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारा जीवन तपोमय हो। 'ऋतं तपः, सत्यं तपः, शान्तं तपः, शमस्तपः, दमस्तपः' के अनुसार हम 'ऋत, सत्य, शान्त, शम, दम' आदि तपों में लगे रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**त्वष्टा** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]**॥

विचारपूर्वक कर्म

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा॥ ८॥

१. **सुयुजः**=हमें उत्तम कर्मों में लगानेवाला **त्वष्टा**=वह निर्माता व ज्ञानदीप्त प्रभु (त्विषेर्वा) **नु**=अब **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन यज्ञ में **बहुधा**=अनेक प्रकार से **रूपाः**=पदार्थों के निरूपणों को अथवा उत्तम रूपों को **युनक्तु**=युक्त करे। **स्वाहा**=उस त्वष्टा के प्रति हम अपना अर्पण करें।

भावार्थ—हम सब बातों का ठीक से निरूपण करके कर्त्तव्यकर्मों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**भगः** ॥ छन्दः—**त्रिपदापिपीलिकामध्यापुरउष्णिक् [एकावसाना]**॥

ऐश्वर्य व उत्तम इच्छाएँ

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन्यज्ञे
प्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा॥ ९॥

१. **प्रविद्वान्**=प्रकृष्ट ज्ञानी, **सुयुजः** हमें उत्तम कर्मों में लगानेवाला **भगः**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **नु** अब **अस्मिन् यज्ञे** इस जीवन-यज्ञ में **अस्मै**=इस संसार के हित के लिए **आशिषः** उत्तम इच्छाओं को **युनक्तु** हमारे साथ जोड़े। **स्वाहा**=हम उस 'भग' के प्रति अपना अर्पण करते हैं। वह हमें **युनक्तु**=सदा उत्तम कर्मों में लगाए।

भावार्थ—हम ऐश्वर्य को प्राप्त करके उत्तम इच्छाओं से युक्त हों—संसार का हित करनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]**॥

पयांसि

सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा॥ १०॥

१. **सुयुजः**=उत्तम कर्मों में व्यापृत करनेवाला **सोमः**=शान्त प्रभु **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन यज्ञ में **बहुधा**=बहुत प्रकार से **पयांसि**=(अन्नानि—नि० २.७) आप्यायन के साधनभूत अन्नों को **युनक्तु**=हमारे साथ जोड़े। **स्वाहा**=उस प्रभु के प्रति मैं अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—उत्तम अन्नों का प्रयोग करते हुए हम इस जीवन-यज्ञ में अपना आप्यायन करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**द्विपदाप्राजापत्याबृहती [एकावसाना]** ॥

वीर्याणि

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्या ॅ ण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

१. **सुयुजः**=उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाला **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभु **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन-यज्ञ में **बहुधा**=बहुत प्रकार से **वीर्याणि**=वीर्यों को **युनक्तु**=हमारे साथ जोड़े। **स्वाहा**=हम उस इन्द्र के प्रति अपना समर्पण करते हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनते हुए वीर्य को अपने में सुरक्षित रक्खें।

सूचना—गतमन्त्र में 'सोमः, पयांसि' शब्दों का प्रयोग संकेत करता है कि हम सौम्य भोजन ही करें। इस मन्त्र का 'इन्द्रः' जितेन्द्रियता का द्योतक है। एवं, वीर्य-रक्षा के लिए 'सौम्य जीवन व जितेन्द्रियता' प्रमुख साधन हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**परातिशक्वरीचतुष्पदाजगती** ॥

ब्रह्मणा, वषट्कारेण

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ।

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्व ॅ रिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

१. **अश्विना**-प्राणापानो! आप **ब्रह्मणा**=ज्ञान से तथा **वषट्कारेण**=दान से, त्याग से **यज्ञं वर्धयन्तौ**-यज्ञ को, श्रेष्ठतम कर्म को बढ़ाते हुए **अर्वाञ्चौ यातम्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होओ। प्राणसाधना करते हुए हम ज्ञान व त्याग के साथ अपने जीवन में यज्ञों का वर्धन करें। २. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामी प्रभो! आप **ब्रह्मणा**=ज्ञान के साथ **अर्वाङ् याहि**=हमें हृदयदेश में प्राप्त होओ। इस **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष को **अयम्**-यह **यज्ञः**=यज्ञ प्राप्त हो तथा **इदं स्वः**=यह सुख व प्रकाश प्राप्त हो। **स्वाहा**=हम यज्ञ के प्रति अपना अर्पण करें।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम ज्ञान व दान के साथ अपने अन्दर यज्ञों का वर्धन करें। ज्ञान के द्वारा हृदय में प्रभु का दर्शन करें। हमारा जीवन यज्ञमय व सुखी हो।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ब्रह्मा' ही है।

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्म का लक्षण

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।

द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥ १ ॥

१. **अस्य अग्नेः**=(अग्निः अग्रणीः) इस आगे-और-आगे बढ़नेवाले की **समिधः**-दीप्तियाँ **ऊर्ध्वाः**-उत्कृष्ट **भवन्ति**=होती हैं। इसकी सब इन्द्रियाँ शक्तियों से दीप्त होती हैं। इस अग्नि की **शुक्रा**=अत्यन्त शुद्ध **शोचींषि**-मानस पवित्रताएँ **ऊर्ध्वा भवन्ति**=उत्कृष्ट होती हैं। इसका शरीर नीरोग व शक्ति सम्पन्न होता है तो मन भी पूर्ण निर्मल। इसकी ज्ञान-दीप्तियाँ भी **द्युमत्तमा**=अतिशयेन दीप्तिवाली होती हैं। २. इसप्रकार यह अग्नि **सुप्रतीकः**=तेजस्वी, शोभन मुखवाला **स-सूनुः**-उत्तम सन्तानों से युक्त **तनूनपात्**-शरीर के स्वास्थ्य को न गिरने देनेवाला, **असुरः**=अपने में प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाला, **भूरिपाणिः**=पालक व पोषक हाथोंवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मा वह है जिसकी तेजस्विता, मानस पवित्रता व ज्ञानदीप्ति उत्कृष्ट है, जो उत्तम मुखवाला, उत्तम सन्तानवाला, स्वस्थ, प्राणशक्ति सम्पन्न व रक्षक हाथोंवाला है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीभुरिगनुष्टुप्** ॥

मध्वा घृतेन

दे॒वो दे॒वेषु॑ दे॒वः प॒थो अ॑नक्ति॒ मध्वा॑ घृ॒तेन॑ ॥ २ ॥

१. गतमन्त्र का ब्रह्मा **देवः**-देववृत्ति का बनता है, **देवेषु देवः**-देवों में देव, अर्थात् अतिशयेन उत्कृष्ट देव बनता है। यह **पथः** अपने जीवन-मार्गों को **मध्वाः** माधुर्य से—वाणी की मिठास से तथा **घृतेन**-ज्ञानदीप्ति व नैर्मल्य (मल-क्षरण) से **अनक्ति**-अलंकृत करता है।

भावार्थ—ब्रह्मा वह है जो देव बनता है, मधुर होता है तथा ज्ञानदीप्त व निर्मल बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्चीबृहती** ॥

सुकृत, देवः सविता

मध्वा॑ य॒ज्ञं न॑क्षति प्रैणा॒नो न॒राशंसो॑ अ॒ग्निः सु॒कृद्दे॒वः स॑वि॒ता वि॒श्ववा॑रः ॥ ३ ॥

१. **मध्वा**-माधुर्य के साथ **यज्ञं प्रैणानः**-यज्ञ को अपने में प्रेरित करता हुआ **नक्षति** गति करता है, **नराशंसः**-नरों का शंसनीय बनता है, **अग्निः**-अग्रणी होता है। २. **सुकृत्**-उत्तम कर्मों को करनेवाला **देवः**-दिव्य गुणों का पुञ्ज, **सविता**-उत्पादक, निर्माण के कार्य करनेवाला, **विश्ववारः**=सब वरणीय धनोंवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मा के जीवन में माधुर्य के साथ यज्ञ, लोकप्रियता, आगे बढ़ना, पुण्य, दिव्यता, उत्पादकता तथा सब वरणीय धनों की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीभुरिग्बृहती** ॥

शवसा, घृता, नमसा

अच्छा॒यमे॑ति॒ शव॑सा घृ॒ता चि॒दीडा॑नो॒ वह्नि॒र्नम॑सा ॥ ४ ॥

१. **अयम्**-यह ब्रह्मा **शवसा** बल से तथा **घृता**-ज्ञान दीप्ति से **चित्**-निश्चयपूर्वक **ईडानः**-स्तुति करता हुआ तथा **नमसा वह्निः**-नमन के साथ सब कर्त्तव्यकर्मों का वहन करता हुआ **अच्छ एति**=प्रभु की ओर गति करता है।

भावार्थ—ब्रह्मा वह है, जिसके शरीर में बल है (शवस्), मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति है (घृत) तथा मन में निरभिमानता है (नमस्)। इनसे ही यह प्रभु का पूजन करता है और उसे प्राप्त करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप्** ॥

मधुरवाणी, प्रभु-महिमा-स्मरण

अ॒ग्निः स्रुचो॑ अध्व॒रेषु॑ प्र॒यक्षु॒ स य॑क्षदस्य महि॒मान॑म॒ग्नेः ॥ ५ ॥

१. **अग्निः**-यह अग्रणी ब्रह्मा **अध्वरेषु**-हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों में **स्रुचः प्रयक्षु**=स्रुचों का—उत्तम वाणियों का प्रयोग करनेवाला है (वाग्वै स्रुचः)। २. **सः**=वह अग्नि—अग्रणी व्यक्ति **अस्य अग्नेः** इस सर्वमहान् अग्नि प्रभु की **महिमानं यक्षत्**-महिमा को पूजित करनेवाला हो।

भावार्थ—ब्रह्मा वह है जो यज्ञात्मक कर्मों को करता हुआ मधुरवाणी का प्रयोग करता है और प्रभु की महिमा का स्मरण करता हुआ निरभिमान बना रहता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदाविराड्गायत्री** ॥

वसुधा-तरः, वसवः च

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन्वसुधातरश्च॥ ६ ॥

१. **तरी**-संसार-सागर को तैरनेवाला वह होता है जोकि **मन्द्रासु**=आनन्द की साधनभूत क्रियाओं में—किन्हीं भी आनन्द के अवसरों पर **प्रयक्षु**=उस प्रभु के पूजन की कामनावाला होता है—प्रभु का यजन करता है। २. यह **वसुधा-तरः च**=वसुओं को धारण करनेवाली पृथिवी को तैर जानेवाले—पार्थिव भोगों से ऊपर उठ जानेवाले और **वसवः च**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले लोग **अतिष्ठन्**-प्रभु में स्थित होते हैं।

भावार्थ—संसार सागर को तैर जानेवाला व्यक्ति वह है जोकि आनन्द के अवसरों पर प्रभु का पूजन करता है। पार्थिव भोगों से ऊपर उठनेवाले व अपने निवास को उत्तम बनानेवाले ये लोग ही प्रभु में स्थित होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीबृहती** ॥

दिव्यता व व्रतरक्षण

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा॥ ७॥

१. **अस्य**=गतमन्त्र के 'तरी' के **द्वारः**=इन्द्रिय-द्वार **देवीः**=दिव्य गुणयुक्त व प्रकाशमय होते हैं। २. इसके **विश्वे**-सब इन्द्रिय द्वार **विश्वहा**=सदा **व्रतम् अनुरक्षन्ति**=व्रतों का अनुकूलता के साथ रक्षण करते हैं। जिस इन्द्रिय का जो व्रत है, उसका वह पालन करती ही है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-प्राप्ति में लगती हैं और कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहती हैं।

भावार्थ—भवसागर को तैरनेवाले के इन्द्रिय द्वार प्रकाशमय होते हैं और अपने-अपने व्रत का पालन करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**संस्तारपङ्क्तिः** ॥

यज्ञ-तत्परता

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः॥ ८॥

१. **अग्नेः**-उस महान् अग्नि प्रभु के **उरुव्यचसा धाम्ना**-अतिशयेन विस्तारवाले तेज से **पत्यमाने**-(पत ऐश्वर्य) ऐश्वर्यवाले होते हुए **आसु सु अयन्ती**=समन्तात् सुन्दरता से गति करते हुए **यजते**=परस्पर सङ्गत **उपाके**=एक-दूसरे के समीप प्राप्त होते हुए **उषासानक्ता**-दिन-रात **नः**=हमारे **इमम्**-इस **अध्वरम्**-हिंसारहित **यज्ञम् अवतम्**=यज्ञ का रक्षण करें, अर्थात् हम सदा यज्ञों को करनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु के तेज से तेजस्वी होते हुए हम दिन-रात यज्ञों में व्यापृत रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भापरातिजगती** ॥

प्रभु-नामोच्चारण

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्वि ष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना॥ ९॥

१. **दैवाः**=उस देव (प्रभु) से शरीर में स्थापित किये गये **होतारः**=जीवन यज्ञ को चलानेवाले हे प्राणो! **नः**=हमारे **अध्वरम् ऊर्ध्वम्**-जीवन-यज्ञ को उत्कृष्ट बनाओ। उस **अग्रेः**=अग्रणी

प्रभु की—प्रभु से दी गई **जिह्वया** जिह्वा से **अभिगृणत** प्रातः सायं प्रभु के नामों का उच्चरण करो। **नः स्विष्टये** हमारी स्विष्टि के लिए—उत्तम अभीष्टों की प्राप्ति के लिए **गृणत** प्रभु का स्तवन करो। यह प्रभु-स्तवन हमें उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराता हुआ अधिक-और अधिक उन्नत करता है। २. **इडा**=प्रशस्त अन्न (इडा इति अन्ननाम निघण्टौ), **सरस्वती**-ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता तथा **भारती**-हमारा समुचित भरण करनेवाली **मही**=पूजा की वृत्ति (मह पूजायाम्)—ये **तिस्रः**=तीनों **देवीः**-दिव्यताएँ **इदं बर्हिः**-इस वासनाशून्य हृदय में **आसदन्ताम्**=आसीन हों। ये सब दिव्य वस्तुएँ व गुण एक एक करके **गृणाना**-प्रभु का ही नामोच्चरण करनेवाली हों। प्रशस्त अन्न हमें सात्त्विक वृत्तिवाला बनाकर प्रभु नामोच्चारण कराये, ज्ञान हमें प्रभु नामोच्चरण में प्रवृत्त करे, स्तुति में हम प्रभु-नामोच्चारण करें।

भावार्थ—प्रभु से शरीर में स्थापित किये गये प्राण हमें यज्ञों में प्रवृत्त करें और जिह्व से हम प्रभु के नामों का उच्चारण करें। 'प्रशस्त अन्न का सेवन, विद्या का आराधन व प्रभुस्तवन'—ये सब हमें प्रभु नामोच्चारण में प्रवृत्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

हम धन में हों, पर उससे बँध न जाएँ

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु। देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य॥ १०॥

१. **त्वष्टः देव**-सर्वनिर्मातः, दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **तत्**-उस **तुरीपम्** (तुरी great strength) महती शक्ति के रक्षक, **अद्भुतम्**=आश्चर्यकारक गुणों को उत्पन्न करनेवाले, **पुरुक्षु**=पालन व पूराण करनेवाले तथा उत्तम निवासवाले (पुरुक्षु, पृ पालनपूरणयोः, क्षि निवासगत्योः), **रायस्पोषम्**-धन के पोषण को **विष्य**=छोड़िए—बरसाइए, अर्थात् खूब प्राप्त कराइए। २. धन तो हमें प्राप्त कराइए, परन्तु हे प्रभो! **नाभिः**-इस धन के बन्धन को (णह बन्धने) **अस्य**-(असु क्षेपणे) परे फेंक दीजिए। यह धन हमें बाँधनेवाला न हो।

भावार्थ—हे प्रभो! हमें वह धन प्राप्त कराइए जो शक्ति का रक्षक व अद्भुत उन्नति का साधक हो, जो पालक पूरक व निवास को उत्तम बनानेवाला हो। साथ ही यह भी अनुग्रह कीजिए कि हम धन में फँस न जाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

देवों के लिए दान व यज्ञ

वनस्पतेऽव सृजा रराणः। त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु॥ ११॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु धन प्राप्त कराते हैं। धन प्राप्त कराके स्तोता को प्रेरणा देते हैं कि हे **वनस्पते** सम्भजनीय धन के रक्षक (Trustee)! (धन तो प्रभु का है, तू तो उसका रक्षक है), स्तोतः! तू **देवेभ्यः त्मना रराणः**-देवों के लिए स्वयं इस धन को देता हुआ **अवसृज**-इस धन के बन्धन को छोड़। दान ही तुझे इस धन के बन्धन से मुक्त करेगा। २. साथ ही **शमिता अग्निः** सब रोगों को शान्त करनेवाला यह यज्ञ का अग्नि **हव्यं स्वदयतु**-हव्य पदार्थों का स्वाद ले, अर्थात् तू धन का विनियोग यज्ञों में कर। ये यज्ञ तुझे नीरोग भी बनाएँगे और धन का बन्धन भी छूटेगा।

भावार्थ—यदि हम धनार्जन करके इस धन को देवों के लिए स्वयं देते रहेंगे और इस धन द्वारा यज्ञों को करते रहेंगे तो धन के बन्धन में न फँसेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

यज्ञशेष का सेवन

अग्ने स्वाहां कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्रांय यज्ञं विश्वेदेवा हुविरिदं जुषन्ताम् ॥ १२ ॥

१. **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! **जातवेदः**=(वेदस्=wealth) उत्तम धनवाले जीव! तू **स्वाहा कृणुहि**=इस धन को अग्नि में आहुत करनेवाला बन। इस धन द्वारा अग्निहोत्र करनेवाला बन। यह तेरी नीरोगता का साधक होगा। **इन्द्राय**=शत्रु-विद्रावक राजा के लिए (कृणुहि) इस धन को प्रदान कर। कर-प्राप्त धन से ही तो वह इन्द्र राष्ट्र-रक्षण करेगा। २. **विश्वेदेवाः**=सब देव **यज्ञम्**=तेरे इस दान को **जुषन्ताम्**=प्राप्त हों, सेवन करें। इस धन से ही वे प्रजाहित के कार्यों को करनेवाले बनेंगे। सब लोगों को यही चाहिए कि **इदं हविः**=इस दानपूर्वक अदन का **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें। दान दें, बचे हुए को ही खाएँ।

भावार्थ—एक प्रगतिशील धन-प्राप्त व्यक्ति धन का विनियोग अग्निहोत्र में करे। राजा के लिए धन दे, विद्वानों के लिए धन दे तथा सदा बचे हुए को ही खाए। यह यज्ञशेष ही अमृत है, इसी का सेवन ठीक है।

विशेष—गतमन्त्र के अनुसार धनाकर्षण से डाँवाडोल न होनेवाला 'अथर्वा' अगले सूक्त का ऋषि है।

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'हरित, रजत, अयस्'

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वायं शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥ १ ॥

१. **नव प्राणन्**=नौ प्राणों को **नवभिः**=नौ इन्द्रियों के साथ **संमिमीते**=सम्यक् मापवाला करता है—सम्यक् मिलाकर रखता है, जिससे **शतशारदाय दीर्घायुत्वाय**=सौ वर्ष का दीर्घजीवन प्राप्त हो। सब इन्द्रियाँ प्राणशक्ति-सम्पन्न बनी रहें तभी दीर्घजीवन की प्राप्ति सम्भव है। २. इन नौ इन्द्रियों में **त्रीणि**=तीन—'कान, नाक व आँख' नामक इन्द्रियाँ **तपसा**=तप के द्वारा **हरिते**=अज्ञान का अपहरण करनेवाले सात्त्विक भाव में **विष्ठितानि**=स्थित हैं। इन तीनों इन्द्रियों के द्वारा अज्ञान का अपहरण होकर मनुष्य की प्रवृत्ति शान्ति, भक्ति व करुणा की ओर बहती है। ३. **त्रीणि**-'मुख, त्वचा व हाथ'—ये तीन इन्द्रियाँ तप के द्वारा **रजते**=रञ्जन का साधन बनती हुई राजसभाओं में स्थित होती हैं। राजसभाव होने पर 'शृंगार, वीर व अद्भुत' रसों की उत्पत्ति होती है। शेष **त्रीणि**='पायु, उपस्थ तथा पाद्' नामक तीन इन्द्रियाँ तप के द्वारा **अयसि**=शरीर को लोहे के समान दृढ़ बनाने में लगी हुई तामसभाव में स्थित होती हैं। इन्हीं के कार्यों में कुछ विकृति आने पर 'रौद्र, बीभत्स व भयानक' रसों की उत्पत्ति हुआ करती है, इनके ठीक कार्य करने पर शरीर लोहे की भाँति दृढ़ बना रहता है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा सब इन्द्रियों को प्राणशक्ति-सम्पन्न करें। सौ वर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त करें। 'कान, नाक आँख' के ठीक व्यापार से अज्ञान को दूर करें। 'मुख, त्वचा व हाथ' के ठीक व्यापार से अपना ठीक रञ्जन करते हुए रजत (चाँदी-धन) को प्राप्त करें। 'पायु, उपस्थ व पाद्' के ठीक व्यापार से शरीर को लोहवत् दृढ़ बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देवलोक—काल का आनुकूल्य

अ॒ग्निः सूर्य॑श्च॒न्द्रमा॒ भूमि॒रापो॒ द्यौर॒न्तरि॑क्षं प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च।
आ॒र्त॒वा ऋ॒तुभि॑ः संविदा॒ना अ॒नेन॑ मा त्रि॒वृता॑ पारयन्तु॥ २॥

१. **अग्निः, सूर्यः, चन्द्रमाः**-अग्नि, सूर्य और चन्द्र, **भूमिः आपः द्यौः**-पृथिवी, जल और द्युलोक **अन्तरिक्षम् प्रदिशः दिशः च आर्तवाः ऋतुभिः संविदानाः** अन्तरिक्ष, दिशाएँ, उपदिशाएँ तथा ऋतुओं के साथ मेल खाते हुए सब कालविभाग **मा**-मुझे **अनेन त्रिवृता पारयन्तु**-इस त्रिवृत् के द्वारा पार करें। २. गतमन्त्र में 'हरित, रजत और अयस्' में विष्ठित जिस त्रिवृत् का वर्णन हुआ है, उसके द्वारा मैं भवसागर से पार हो जाऊँ। अग्नि आदि सब देव, पृथिवी आदि सब लोक तथा सब कालविभाग इस कार्य में मेरे लिए अनुकूलतावाले हों।

भावार्थ—सब देवों, सब लोकों व सब कालों की अनुकूलता से मैं नव प्राण-सम्पन्न नव इन्द्रियों के द्वारा इस भव सागर को पार करनेवाला बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अन्नस्य, पुरुषस्य पशूनां' भूमा

त्र॒यः पोषा॑स्त्रि॒वृति॑ श्रयन्ताम॒नक्तु॑ पू॒षा पय॑सा घृ॒तेन॑।
अन्न॑स्य भू॒मा पुरु॑षस्य भू॒मा भू॒मा प॒शू॒नां त इ॒ह श्र॑यन्ताम्॥ ३॥

१. **त्रिवृति** तीन-तीन इन्द्रियों के 'हरित, रजत व अयस्' में विष्ठित होने पर **त्रयः पोषाः** तीन पोषण—'ज्ञान, धन व शक्ति' के पोषण **श्रयन्ताम्** मेरा आश्रय करें। **पूषा** सर्वपोषक प्रभु **पयसा** आप्यायन के साधनभूत **घृतेन**-नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति से (घृ क्षरणदीप्त्योः) **अनक्तु** मुझे अलंकृत करें। २. **अन्नस्य भूमा**=अन्न का बाहुल्य, **पुरुषस्य भूमा** पुरुषों का बाहुल्य तथा **पशूनां भूमा**-गवादि पशुओं का बाहुल्य **ते** ये तीनों ही बाहुल्य **इह**-यहाँ मेरे जीवन में **श्रयन्ताम्**-आश्रय करें।

भावार्थ—मेरे त्रिवृत् में 'ज्ञान, धन व शक्ति' का पोषण हो। हमें नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति प्राप्त हो। अन्न, पुरुष व पशुओं का हमारे यहाँ प्राचुर्य हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

आदित्य, अग्नि, इन्द्र

इ॒ममा॑दित्या॒ वसु॑ना॒ समु॑क्षते॒मम॑ग्ने वर्धय वावृधा॒नः।
इ॒ममि॑न्द्र॒ सं सृ॑ज वी॒र्ये॑ ∫ णा॒स्मिन्त्रि॒वृच्छ्र॑यतां पोषयि॒ष्णु॥ ४॥

१. हे **आदित्याः**-आदित्य विद्वानो! प्रकृति, जीव, परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करनेवाले विद्वानो! **इमम्**-इसे **वसुना**-निवास के लिए साधनभूत ज्ञान धन से **समुक्षत**-सिक्त कर दो—इसे जीवन को उत्तम बनानेवाले ज्ञान से परिपूर्ण का दो। हे **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! **वावृधानः** स्तुतियों के द्वारा बढ़ाये जाते हुए आप **इमम्**-इस स्तोता को **वर्धय**=बढ़ाइए। प्रभु-स्तवन से प्रभु की भावना हममें बढ़े और हम वृद्धि को प्राप्त हों। २. हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **इमम्** इस उपासक को **वीर्येण संसृज**-वीर्य से संसृष्ट करो। **अस्मिन्** इस उपासक में **पोषयिष्णु**-पोषण को प्राप्त कराता हुआ **त्रिवृत्** प्रथम मन्त्र में वर्णित 'हरित, रजत व अयस्' में विष्ठित इन्द्रिय-त्रिक **श्रयताम्** आश्रय करें।

भावार्थ—आदित्यों की कृपा से हमें ज्ञान-धन प्राप्त हो। अग्निरूप प्रभु हमारा वर्धन करें।

शत्रु-विद्रावक प्रभु हमें वीर्य-संसृष्ट करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हरित, अयस्, अर्जुन

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्॥ ५॥

१. **भूमिः**-निवास का साधनभूत (भवन्ति यस्मिन्) यह शरीर **त्वा**-तुझे **हरितेन**=अज्ञान के अपहरण के द्वारा **पातु**-सब प्रकार से रक्षित करे। इस मानव शरीर को हम ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन समझें। २. **विश्वभृत्**=सबका भरण करनेवाला **अग्निः**=अग्नितत्त्व **सजोषाः**=तेरे साथ प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्यकर्मों का सेवन करता हुआ **अयसा**=लोहवत् दृढ़ शरीर से **पिपर्तु**-तेरा पालन करे। अग्नितत्त्व के ठीक होने से हमारे शरीर दृढ़ हों और हम सब कर्त्तव्यकर्मों को करनेवाले बनें। ३. **वीरुद्भिः**=लता-वनस्पतियों से—वानस्पतिक पदार्थों का सेवन करता हुआ **संविदानम्**=मेलवाला होता हुआ **ते**=तेरा यह **अर्जुनम्**-(रजतम्) चँदीला राजततत्त्व **सुमनस्य-मानम्**=उत्तम सौमनस्य से युक्त **दक्षम्**=बल को **दधातु**=धारण करे।

भावार्थ—इस मानव-शरीर में ज्ञान-प्राप्ति को हम अपना मुख्य कर्त्तव्य समझें। अग्नितत्त्व से सब कर्मों में प्रेरित होते हुए हम सुदृढ़ शरीर हों तथा उचित राजतत्त्व हमें प्रसन्नतायुक्त बलवाला बनाए।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशक्वरी** ॥

त्रिवृत् हिरण्य

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य
परापतत्। अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत्ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे॥ ६॥

१. **इदं हिरण्यम्**-यह हिरण्य **जन्मना**-जन्म से **त्रेधा जातम्**=तीन प्रकार का हो गया है। **एकम्**-इनमें से एक **अग्नेः प्रियतमं बभूव**-अग्नि का बड़ा प्यारा है। अग्नि में पड़कर यह हिरण्य (सुवर्ण) खूब ही चमक उठता है। २. **एकम्**=एक **हिंसितस्य सोमस्य**-पीड़ित की हुई (निचोड़ी हुई) सोमलता में से **परापतत्**=निकल आता है। सोमलता का रस भी रोगों का औषध होने से हिरण्य है—हितरमणीय है। ३. **एकम्**=एक को **वेधसा**=सृष्टि का निर्माण करनेवाले **अपाम्**=जीवनों का—सन्तानों को जन्म देनेवाले जीवों का **रेतः**-वीर्य **आहुः**=कहते हैं। **तत्**=वह **त्रिवृत्**-तीनों रूपों में होनेवाला **हिरण्यम्**=हिरण्य **ते**=तेरे **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए **अस्तु**=हो।

भावार्थ—सुवर्ण धातु 'स्वर्ण भस्म' के रूप में राजयक्ष्मा की निवृत्ति के लिए उपयुक्त होता है। सोमला का रस महान् औषध है और वीर्य तो जीवन का आधार है ही। यह त्रिविध हिरण्य हमें दीर्घायु प्रदान करे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

जमदग्नि व कश्यप का आयुष्य

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम्॥ ७॥

१. **जमदग्नेः त्र्यायुषम्**=प्रज्वलित जाठराग्निवाले नीरोग जमदग्नि की त्रिगुणा (३०० वर्ष की) आयु होती है। **कश्य-पस्य**=(कश्य=ज्ञान, वीर्य) ज्ञान व वीर्य का रक्षण करनेवाले की भी **त्र्यायुषम्**=त्रिगुण आयु होती है। २. **त्रेधा**=तीन प्रकार से **अमृतस्य**=नीरोगता के साधन शरीरस्थ

वीर्य का (मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्), **चक्षणम्** दर्शन होता है। यह शरीर को नीरोग, मन को निर्मल व बुद्धि को दीप्त बनाता है। इसके द्वारा मैं (प्रभु) **ते** तुझ जीव के लिए **त्रीणि आयूंषि**-सौ वर्ष के तीन जीवनों को—तीन सौ वर्ष के जीवन को **अकरम्**=करता हूँ।

भावार्थ—दीर्घजीवन के लिए आवश्यक है कि जाठराग्नि को मन्द न होने दिया जाए तथा वीर्य का रक्षण किया जाए। इस वीर्य-रक्षण का शरीर में त्रिविध परिणाम है—नीरोगता, निर्मलता और दीप्ति।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शक्राः

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा॥ ८॥

१. **त्रयः सुपर्णाः**-मन्त्र छह में वर्णित उत्तमता से पालन करनेवाले तीनों हिरण्य 'स्वर्णभस्म, सोमरस व वीर्य' **त्रिवृता**='हरित, रजत व अयस्' में विष्ठित त्रिकों के साथ **यदा आयन्**-जब प्राप्त होते हैं तब ये उपासक **एकाक्षरम् अभिसंभूय**-उस अद्वितीय, अविनाशी प्रभु की ओर गतिवाले होकर—प्रभु प्रवण होकर **शक्राः**-वस्तुतः शक्तिशाली बनते हैं। २. ये **अमृतेन साकम्**-अमृतत्व के साधनभूत वीर्य से रक्षण के साथ **मृत्युम्**-मृत्यु को **प्रत्यौहन्**=(अहिर् अर्दन) अपने से दूर पीड़ित करते हैं तथा **विश्वा दुरितानि**=सब दुरितों को—दुर्गमनों को **अन्तर्दधानाः**=अन्तर्हित करते हैं।

भावार्थ—'स्वर्ण, सोमरस व वीर्य' को प्राप्त करके प्रभु प्रवण होते हुए हम शक्तिशाली बनें, मृत्यु को अपने से दूर करें, वीर्यरक्षण से सब पापों को अपने से तिरोहित कर दें—दूर भगा दें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

देव-पुराः (देवों के अग्रगमन)

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात्त्वा पात्वर्जुनम्।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद्देवपुरा अयम्॥ ९॥

१. **हरितम्**-अज्ञान को हरनेवाला 'कान, नाक, मुख' का त्रिक **त्वा** तुझे **दिवः**-ज्ञान के हेतु से **पातु**-रक्षित करे। **अर्जुनम्**-यह चँदीला रजत—आनन्द का साधन 'मुख, त्वचा, हाथ' का त्रिक **त्वा**=तुझे **मध्यात्**=हृदय व उदर से **पातु**-रक्षित करे। तेरा यह त्रिक रञ्जन को मर्यादा में रखता हुआ तेरे हृदय व उदर को विकृत न होने दे। **अयस्मयम्**='पायु, उपस्थ व पाद' का त्रिक शरीर को दृढ़ बनाता हुआ **भूम्या**-इस शरीर के हेतु से **पातु**=तेरा रक्षण करे। इस त्रिक का समुचित कार्य शरीर को दृढ़ बनाना होता है। **अयम्**-द्युलोक, मध्य व भूमि (मस्तिष्क, हृदय व उदर तथा शरीर) से रक्षित होनेवाला यह पुरुष **देवपुराः प्रागात्** देवों की अग्रगतिवाला होता है, देवलोकों को प्राप्त करता है (पुर अग्रगमने, टाप्)। देव जैसे आगे गतिवाले होते हैं—उन्नति पथ पर आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार यह उन देवपुरों को—देवों की अग्रगतियों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—'हरित' द्युलोक से, 'अर्जुन' मध्य से तथा 'अयस्' भूमि से हमारा रक्षण करे। यह रक्षित पुरुष देवों की अग्रगतियोंवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

वर्चस्वी, द्विषताम् उत्तरः

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः।
तास्त्वं बिभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव॥ १०॥

१. **इमाः**=ये **तिस्रः**=तीन **देवपुराः**=देवों की अग्रगतियाँ हैं। देव 'आँख, नाक, कान' के यथोचित व्यापार से ज्ञानवृद्धि करते हैं, 'मुख, त्वचा व हाथ' के यथोचित व्यवहार से उचित आनन्द का अर्जन करते हुए 'हृदय व उदर' को ठीक रखते हैं, 'पायु, उपस्थ व पाद' की संयत गति से शरीर को सुदृढ़ बनाते हैं। **ताः**=उन तीन देवों की अग्रगतियाँ **त्वा**=तुझे **सर्वतः रक्षन्तु**=सब ओर से रक्षित करनेवाली हों। इनके द्वारा तू अपना पूर्ण रक्षण कर। २. **त्वम्**=तू **ताः**=उन्हें **बिभ्रत्**=धारण करता हुआ **वर्चस्वी**=प्रशस्त वर्चस्-(Vitality)-वाला व **द्विषताम् उत्तरः**=शत्रुओं का विजेता **भव**=हो।

भावार्थ—देवों के अग्रगमनों को अपनाकर हम वर्चस्वी व शत्रु-विजेता बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

इन्द्रिय-संयम

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे॥ ११॥

१. **देवानाम्**=देववृत्तिवाले व्यक्तियों का **पुरम्**=यह अग्र-गमन **हिरण्यम्**=हितरमणीय है—ज्योतिर्मय है। यह **अमृतम्**=हमें नीरोग बनानेवाला है। **यः**=जो भी इस अग्र-गमन को **आबेधे**=अपने में बाँधता है, वह **प्रथमः**=प्रथम होता है—ब्रह्मा बनता है (ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव), **देवः**=देव होता है, **अग्रे**=आगे-और-आगे बढ़ता है। २. **तस्मै**=उस 'उग्र गतिवाले प्रथम देव' के लिए **नमः**=नमस्कार हो। मैं भी **दश**=दसों इन्द्रियों को **प्राची**=(प्र अञ्च) अग्रगतिवाला **कृणोमि**=करता हूँ। **त्रिवृत्**='हरित, अर्जुन (रजत) व अयस्' में विष्ठित इन्द्रिय-त्रिक के **आबधे**=समन्तात् बन्धन में, वशीकरण में **मे अनुमन्यताम्**=मुझे अनुमति देनेवाला हो—मैं इन सब इन्द्रियों को वश में कर सकूँ।

भावार्थ—इन्द्रियों को वश में करके हम देवों की भाँति अग्रगतिवाले हों। उन देवों का हम आदर करें और स्वयं भी इन्द्रियों को संयत करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

अर्यमा, पूषा, बृहस्पति

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः। अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि॥ १२॥

१. **अर्यमा**-(अरीन् यच्छति) शत्रुओं का नियमन करनेवाला साधक **त्वा**-तुझे—'मुख, त्वचा व हाथ' के त्रिक को **आचृतत्**=सब ओर से बाँधे (चती हिंसासंग्रन्थनयोः) अथवा सब ओर से मार ले—वश में कर ले। **पूषा**=पोषण करनेवाला यह साधक 'पायु, उपस्थ व पाद' के त्रिक को वशीभूत करे। **बृहस्पतिः**=ज्ञान का रक्षक व स्वामी बननेवाला यह साधक 'आँख, नाक व कान' के त्रिक को ज्ञान-प्राप्ति में संग्रथित करे। २. **अहः**=सम्पूर्ण दिन **जातस्य**-सदा से प्रादुर्भूत उस स्वयम्भू प्रभु का **यत् नाम**-जो नाम-स्मरण है—नाम का जप है, **तेन**-उसके द्वारा **त्वा**=तुझ इन्द्रिय-त्रिक को **अतिचृतामसि**-अतिशयेन बन्धन में—संयमन में—करते हैं। प्रभु-नामस्मरण इन्द्रिय-संयम में हमारा सहायक होता है।

भावार्थ—इन्द्रिय-संयम के लिए प्रभु नाम स्मरण को अपनाते हुए हम 'अर्यमा, पूषा व बृहस्पति' बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

आयुषे वर्चसे

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि॥ १३॥

१. **ऋतुभिः आर्तवैः** ऋतुओं व ऋतुओं में होनेवाली वनस्पतियों द्वारा **त्वा**-तुझ—'अर्यमा, पूषा, बृहस्पति' (मन्त्र १२) को **आयुषे** आयु के लिए तथा **वर्चसे**-वर्चस् (भास्वर शक्ति) के लिए **कृण्मसि**-करते हैं। २. **संवत्सरस्य**-सम्पूर्ण वर्ष के **तेन तेजसा**-उस तेज से—सम्पूर्ण वर्ष नीरोगता व तेजस्विता से **त्वा**-तुझे **संहनु** संगत (हन् गतौ) करते हैं।

भावार्थ—समयानुसार उस उस ऋतु में उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियों के प्रयोग से हम दीर्घायु व वर्चस्वी हों, सम्पूर्ण वर्ष तेजस्वी व नीरोग बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**त्रिवृत्, अग्न्यादयः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तम्

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु।
भिन्दन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय॥ १४॥

१. गतमन्त्र में वर्णित 'तेजस्' को सम्बोधित करते हुए साधक कहता है कि यह तेजस् **घृतात्** दीप्ति—ज्ञानदीप्ति के हेतु से **उत् लुप्तम्**-ऊर्ध्वगतिवाला किया जाकर अदृष्ट किया जाता है। वीर्य की ऊर्ध्व गति करनेवाला 'ऊर्ध्वरेतस्' पुरुष अपनी ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला होता है। यह वीर्य **मधुना** माधुर्य के हेतु से **समक्तम्**-शरीर में संगत किया गया है। सुरक्षित हुआ हुआ वीर्य जीवन को मधुर बनाता है। **भूमिदृंहम्**-यह शरीररूप भूमि को दृढ़ बनाता है, **अच्युतम्**-हमें शरीर से च्युत नहीं होने देता, अर्थात् दीर्घजीवन का कारण बनता है। **पारयिष्णु**-हमें सब रोगों से पार ले-जानेवाला है। २. **सपत्नान्** रोगरूप शत्रुओं को **भिन्दन्**-विदीर्ण करता हुआ **च**-तथा **अधरान् कृण्वत्**-उन्हें पाव तले रौंदता हुआ हे वीर्य! तू **महते सौभगाय**-मेरे महान् सौभाग्य के लिए **मा आरोह** मेरे शरीर में आरोहण कर—ऊर्ध्वगतिवाला हो। शरीर में सुरक्षित हुआ यह वीर्य हमारे सब प्रकार के उत्थान का कारण बनता है।

भावार्थ—'ज्ञानदीप्ति तथा माधुर्य' के हेतु से वीर्य को शरीर में सुरक्षित व ऊर्ध्वगतिवाला किया जाता है। यह शरीर को दृढ़ बनाता है, हमें सब रोगों से पार ले जाता है, रोगरूप शत्रुओं को कुचलता हुआ यह हमारे महान् सौभाग्य के लिए हो।

विशेष वीर्यरक्षा द्वारा रोगरूप शत्रुओं का विनाश करनेवाला व्यक्ति 'चातन' बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भिषक् (भेषजस्यासि कर्ता)

पुरस्ताद्युक्तो वह जातवेदोऽ ग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग्भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम॥ १॥

१. हे **जातवेदः अग्ने**=सर्वज्ञ अग्रणी प्रभो! **पुरस्तात्**=हमारे जीवन-शकट के आगे **युक्तः**=युक्त हुए-हुए आप **वह**=हमारे जीवन की गाड़ी को ले-चलिए (भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया)। **यथा**=जैसे **इदम्**-यह **क्रियमाणम्**=किया जाना है, उसे **विद्धि**=आप ही जानिए। हमारे जीवन शकट को लक्ष्य पर कैसे पहुँचाना है—यह तो आपको ही पता है। २. **त्वम् भिषक्** आप ही वैद्य हैं **भेषजस्य कर्ता असि**=औषध करनेवाले हैं। जीवन-यात्रा में अयुक्त आहार-विहार से उत्पन्न हो जानेवाले रोगों को आपको दूर करना है। हे प्रभो! **त्वया**=आपसे हम **गाम्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों को, **अश्वम्**-उत्तम कर्मेन्द्रियों को तथा **पुरुषम्**-उत्तम वीर सन्तानों को **सनेम**=प्राप्त करें (यथेह पुरुषोऽसत्)।

भावार्थ—हमारे जीवन-रथ के सारथि प्रभु हैं। वे ही जानते हैं कि यह यात्रा कैसे पूर्ण होनी है। सब रोगों के चिकित्सक वे ही हैं। वे ही उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों व वीर सन्तानों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दिदेव, जघास

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥ २ ॥

१. हे **जातवेदः अग्ने**=सर्वज्ञ, अग्रणी प्रभो! **विश्वेभिः देवैः सह संविदानः**-'माता-पिता, आचार्य व अतिथि' आदि सब देवों के साथ ऐकमत्यवाले हुए हुए आप **तत् तथा कृणु**=उस बात को वैसा कीजिए कि **यथा**=जिससे **यः**=जो रोग **नः**=हमें **दिदेव**=पराजित करना चाहता है (दिव् विजिगीषायाम्), **यतमः**=जो रोग **जघास**=हमें खा ही जाता है, **अस्य**=इस रोग की **सः परिधिः**-वह परिधि—घेरा **पताति**-गिर जाता है, नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—'रोग हमें घेरे न रहें', यही व्यवस्था प्रभु को 'माता पिता व आचार्य द्वारा करानी है।'

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

रोग-परिधि-पतन

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३ ॥

१. हे **जातवेदः अग्ने**-सर्वज्ञ अग्रणी प्रभो! **विश्वेभिः देवैः सह संविदानः**=माता-पिता, आचार्य व अतिथि आदि सब देवों के साथ ऐकमत्य (मेलवाले) होकर **तत् तथा कृणु**=उसे वैसा कीजिए, **यथा**-जिससे कि **अस्य**=इस रोग का **सः परिधिः**=वह घेरा **पताति**=गिर जाता है, गिर जाए।

भावार्थ—प्रभु सब देवों के साथ ऐसी व्यवस्था करें कि हमें घेरनेवाले रोगों का घेरा टूट जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पिशाच-हिंसन

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ ४ ॥

१. **अस्य यतमः पिशाचः जघास**=जो भी पिशाच (रक्तभक्षक कृमि व शत्रु) इसका भक्षण

करता है, **अक्ष्यौ निविध्य**-इसकी आँखों को बींध डाल, **हृदयं निविध्य**-हृदय को बींध डाल, **जिह्वां नितृन्द्धि**-जिह्वा को काट डाल, **दतः प्रमृणीहि**-दाँतों को मसल डाल। २. हे **यविष्ठ**-बुराइयों का अमिश्रण करनेवाले! **अग्ने**-परमात्मन्! **तं प्रतिशृणीहि**-उस पिशाच को हिंसित कर दे।

भावार्थ—हे प्रभो! जो भी पिशाच हमारा भक्षण करता है, उसकी 'आँखों, हृदय, जिह्वा व दाँतों' को विद्ध करके उसे समाप्त कर दीजिए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरोऽतिजगतीविराड्जगती** ॥

हृतं, विहृतं, पराभृतम्

यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान्पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः॥ ५॥

१. **अग्ने**-हमें नीरोग बनाकर उन्नति पथ पर ले चलनेवाले ज्ञानी वैद्य! **अस्य आत्मनः**-इस देह का **पिशाचैः** मांसभक्षी रोगजन्तुओं ने **यत्**-जो **हृतम्** मांस और बल आदि हर लिया है, **यत् विहृतम्**-जो छीन लिया है, **पराभृतम्**-जो लूट लिया है और **यतमत् जग्धम्** जो खा लिया है, **तत्**-उस सबको **विद्वान्**-सम्यक् जानता हुआ **त्वम्** तू **पुनः आभर**-औषध प्रयोग के द्वारा पुनः प्राप्त करा दे। हम **शरीरे मांसं असुम्** शरीर में मांस और प्राणशक्ति को **ऐरयामः**-सब अङ्गों में प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य द्वारा उचित औषध-प्रयोग से रोग कृमियों से जनित कमी दूर की जाती है, शरीर फिर से मांस व रुधिर-सम्पन्न बनाया जाता है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु॥ ६॥

१. **यः**-जो **पिशाचः**-मांसभोजी रोग-जन्तु **आमे**-कच्चे, **सुपक्वे**-पक्के **शबले**-अधपके, **विपक्वे**-खूब पके **अशने**-भोजन में प्रविष्ट होकर **मा ददम्भ** मुझे हिंसित करता है, **तत्**-वह पिशाच **आत्मना प्रजया**-स्वयं और अपनी सन्ततिसहित नष्ट हो जाए। २. **पिशाचाः**-सब रोगजन्तु **वियातयन्ताम्**-नाना प्रकार से पीड़ा को प्राप्त हों और शरीर को छोड़ जाएँ। **अयं अगदः अस्तु**-यह पुरुष नीरोग हो जाए।

भावार्थ—जो रोगकृमि कच्चे पक्के भोजनों में प्रविष्ट होकर हमारा हिंसन करते हैं, वे अपनी सन्तानोंसहित नष्ट हो जाएँ। इस रुग्ण पुरुष को वे पीड़ित न करें। यह नीरोग हो जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

क्षीरे, मन्थे अपां पाने, शयने

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु॥ ७॥
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु॥ ८॥
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु॥ ९॥

१. **यतमः**-जो भी कोई रोगजन्तु **क्षीरे**=दूध में, **मन्थे**-मठे में, **अकृष्टपच्ये धान्ये**-बिना खेती किये उत्पन्न हुए अन्न में, तथा **यः**=जो **अशने**=भोजन में प्रविष्ट होकर **मा ददम्भ**=मुझे हिंसित करता है। २. **यातूनाम्**-यातना देनेवालों में **यतमः क्रव्यात्**=जो मांसभक्षक कृमि **अपां पाने**-जलों का पान करने में अथवा **शयने शयानं मा**=बिस्तर पर सोते हुए मुझे **ददम्भ**-हिंसित करता है, ३. **यातूनां यतमः**-पीड़ा देनेवालों में जो भी **क्रव्यात्**=मांसाहारी कृमि **दिवा नक्तम्**-दिन रात के समय में **शयने शयानम्**=बिस्तर पर सोये हुए **मा ददम्भ**=मुझे हिंसित करता है, **तत्**-वह पिशाच **आत्मना प्रजया**=स्वयं और अपनी सन्ततिसहित विनष्ट हो जाए। **पिशाचाः**-सब रोगजन्तु **वियातयन्ताम्**-नाना प्रकार से पीड़ा को प्राप्त होकर शरीर को छोड़ जाएँ। **अयं अगदः अस्तु**=यह पुरुष नीरोग हो जाए।

भावार्थ—भोजन में, जलों में या दिन व रात में सोने के समय जो भी रोगकृमि हमारी हिंसा का कारण बनता है, वह कृमि नष्ट हो जाए और हमारे शरीर नीरोग बनें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

क्रव्यादं, रुधिरं, मनोहनम्

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः॥ १०॥

१. हे **जातवेदः अग्ने**=ज्ञानी अग्रणी वैद्य! **क्रव्यादम्**=मांस को खा जानेवाले, **रुधिरम्**-रक्त-संचारण में रुकावट पैदा करनेवाले, **मनोहनम्**-मन को बिगाड़ देनेवाले **पिशाचम्**-रोगकृमि को **इन्द्रः**-जितेन्द्रिय पुरुष **वाजी**-शक्तिशाली होता हुआ **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूपी वज्र से **हन्तु**-नष्ट कर दे। 'जितेन्द्रियता, शक्ति व क्रियाशीलता' रोगकृमियों के विनाश के साधन हैं। शरीर में सुरक्षित **सोमः**=वीर्य **अस्य**=इस रोगकृमि के **शिरः च्छिनत्तु**=सिर को काट डाले। यह सोम **धृष्णुः**=रोगरूप शत्रुओं को धर्षण करनेवाला हो।

भावार्थ—वैद्य औषध-प्रयोग से उन कृमियों का विनाश करे जो मांस खा जानेवाले, रुधिराभिसरण में रुकावट पैदा करनेवाले व मन पर उदासी लानेवाले हैं। हम जितेन्द्रिय व क्रियाशील बनकर सोम-रक्षण करते हुए इन रोगों का विनाश कर दें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

दैव्या हेति

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥ ११॥

१. हे **अग्ने**-अग्रणी—हमें नीरोग बनाकर आगे ले चलनेवाले वैद्य! तू **यातुधानान्**-पीड़ा देनेवाले कृमियों को **सनात् मृणसि**-सदा नष्ट करता है। ये **रक्षांसि**-रोगकृमिरूप राक्षस **त्वा**-तुझे **पृतनासु न जिग्युः**-संग्रामों में पराभूत नहीं कर पाते। तू उचित औषध द्वारा इनका विनाश कर देता है। २. इन **क्रव्यादः**=मांस खा जानेवाले कृमियों को **सहमूरान्**-मूलसहित **अनुदह** जला दे। **ते**-तेरी **दैव्यायाः**=रोगों को जीतने की कामना में उत्तम **हेत्याः**=औषधरूप वज्र से **मा मुक्षत**=यह रोग छूट न जाए।

भावार्थ—वैद्य रोगकृमियों को विनष्ट करे। रोगकृमियों के साथ संग्राम में वैद्य पराजित न हो। यह उन मांसभक्षक कृमियों को जड़ से उखाड़ दे। उसकी औषधरूप दैव्या हेति से कोई रोगकृमि छूट न जाए।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

अंशुः इव आप्यायताम्

स॒माह॑र जातवेदो॒ यद्धृ॒तं यत्परा॑भृतम्। गात्रा॑ण्यस्य वर्धन्ता॒मं॒शुरि॒वा प्या॑यताम॒यम्॥ १२ ॥

१. हे **जातवेदः** ज्ञानी वैद्य **अस्य यत् हृतम्**-इस रोगी का जो भाग हर लिया गया है, **यत् पराभृतम्**-जो धातु व बल नष्ट कर दिया गया है, उसे **समाहर**-पुनः भली प्रकार प्राप्त करा। २. **अस्य**-इसके **गात्राणि**-अङ्ग **वर्धन्ताम्** बढ़ें। **अयम्** यह **अंशुः इव** चन्द्र के समान **आप्यायताम्**-दिनों दिन बढ़ता चले।

भावार्थ—ज्ञानी वैद्य औषध प्रयोग द्वारा रोगी की क्षीणता को दूर कर दे। इस रोगी के अङ्ग फिर से बढ़ जाएँ। चन्द्रमा के समान इसका शरीर आप्यायित होता चले।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विरप्शी, मेध्य, अयक्ष्म

सोम॑स्येव जातवेदो अ॒ंशुरा प्या॑यताम॒यम्।
अग्ने॑ विर॒प्शिनं॒ मेध्य॑मय॒क्ष्मं कृ॑णु॒ जीव॑तु॥ १३ ॥

१. हे **जातवेदः** ज्ञानी वैद्य! **अयम्** यह पुरुष **सोमस्य अंशुः इव**-चन्द्रमा की किरण के समान **आप्यायताम्**-आप्यायित होता चले। जैसे चन्द्रमा की एक-एक किरण बढ़ती जाती है, इसीप्रकार यह बढ़ता चले। २. हे **अग्ने** अग्रणी वैद्य! तू इस पुरुष को **विरप्शिनम्** निर्दोष अथवा शुद्ध शब्दों का उच्चारण करनेवाला **मेध्यम्**-पवित्र **अयक्ष्मम्** नीरोग **कृणु**-कर दे, **जीवतु** यह पूर्ण जीवन को जीनेवाला हो।

भावार्थ—उचित औषध प्रयोग से चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त होता हुआ यह पुरुष 'निर्दोष, पवित्र व नीरोग' बने।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**चतुष्पदापराबृहतीककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

ज्ञानदीप्ति व पिशाचजम्भन

ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिधः॑ पिशाच॒जम्भ॑नीः।
तास्त्वं जु॑षस्व॒ प्रति॑ चैना गृहाण जातवेदः॥ १४ ॥

१. हे **अग्ने** अग्रणी विद्वन्! **एताः** ये **ते**-तेरी **समिधः**-ज्ञानदीप्तियाँ **पिशाचजम्भनीः**-पिशाचों का विनाश करनेवाली हैं, ज्ञानदीप्तियाँ राक्षसी वृत्तियों का विनाश करती हैं। २. हे **जातवेदः**-उत्पन्न ज्ञानवाले पुरुष **ताः** उन ज्ञानदीप्तियों को **त्वम्**-तू **जुषस्व**-प्रीतिपूर्वक सेवन कर **च**-और **एनाः** इन ज्ञानदीप्तियों को तू **प्रतिगृहाण**-प्रतिदिन ग्रहण करनेवाला हो।

भावार्थ—हम अपने ज्ञान को दीप्त करके पैशाचिकी वृत्तियों को विनष्ट करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तार्ष्टाघीः समिधः

ता॒र्ष्टा॒घीर॑ग्ने स॒मिधः॒ प्रति॑ गृह्णा॒ह्यर्चिषा॑। जहा॑तु क्र॒व्याद्रू॒पं यो अ॑स्य मां॒सं जिही॑र्षति॥ १५ ॥

१. **तार्ष्टाघीः** (तार्ष्ट अघि गत्याक्षेपणयोः) तृष्णा को विनष्ट करनेवाली **समिधः**-ज्ञानदीप्तियों को **अर्चिषा**-(अर्च पूजायाम्) प्रभु पूजन के द्वारा **प्रतिगृह्णाहि**-ग्रहण करनेवाला बन। २. इसप्रकार प्रभुपूजन व ज्ञान दीप्तियों में प्रवृत्त, लोभनिवृत्त पुरुष को **यः**-जो भी रोगकृमि सताता है और **अस्य** इसके **मांसम्**-मांस को **जिहीर्षति**-हरना चाहता है, वह **क्रव्यात्**-मांसभक्षक

कृमि **रूपं जहातु**=अपने रूप को छोड़ दे, अर्थात् वह कृमि नष्ट हो जाए।

भावार्थ—ज्ञानदीप्ति तृष्णा को नष्ट करती है। यह ज्ञानदीप्ति प्रभुपूजन से प्राप्त होती है। इस ज्ञानदीप्त पुरुष को रोग नहीं सताते।

विशेष—सब रोगों को अपने से पृथक् करनेवाला—रोगों से अपना पीछा छुड़ानेवाला यह ऋषि 'उन्मोचन' है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

असुं बध्नामि ते दृढम्

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितृनसुं बध्नामि ते दृढम्॥ १॥

१. **ते आवतः आवतः**=हे पुरुष! तेरे समीप से समीप, **ते परावतः आवतः**=तुझसे दूर-से-दूर देश से भी **ते असुं दृढं बध्नामि**=तेरे प्राण को बलपूर्वक बाँधता हूँ। **इह एव भव** तू यहाँ ही हो, **पूर्वान् मा नु गाः**=अपने मृत पुरुषों के पीछे मत ही जा। **पितृन् मा अनु गाः** तुझे जन्म देनेवाले अपने पितरों के पीछे मत चला जा।

भावार्थ—मैं तुझमें प्राणशक्ति का धारण करता हूँ। तू अपने पूर्वजों के पीछे शीघ्र जानेवाला मत हो। तू पूर्ण जीवन को प्राप्त कर।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उन्मोचन-प्रमोचने

यत्त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥ २॥
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥ ३॥
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत्।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥ ४॥

१. **यत्**-यदि **स्वः पुरुषः**-अपना कोई सम्बन्धी पुरुष, **यत्**-यदि कोई **अरणः जनः**=(रण शब्दे) असम्भाष्य—हीन पुरुष **त्वा अभि चेरुः**=तुझपर अभिचार वा बुरा आक्रमण करता है तो मैं (आचार्य) **वाचा**=वाणी के द्वारा **उन्मोचनप्रमोचने**-जाल से छूटना व जाल से बचे ही रहना—**उभे**=दोनों का **ते वदामि**=तुझे उपदेश करता हूँ। तू समझदार बनकर उन दुष्टों के जाल से छूट आ, उनके जाल में मत फँस। २. हे शिष्य! **यत्**-जो **अचित्त्या**-नासमझी से अथवा असावधानी से तूने **स्त्रियै**-किसी स्त्रि के लिए **पुंसे**=या पुरुष के लिए **दुद्रोहिथ**-द्रोह किया है अथवा **शेपिषे**=बुरा वचन कहा है, तो मैं वाणी द्वारा तेरे लिए उन्मोचन व प्रमोचन को कहता हूँ। ३. **यत्**=यदि तू **मातृकृतात् एनसः**=माता से किये गये पाप से **च**=और **यत्**-यदि **पितृकृतात् एनसः**=पिता से किये गये पाप से **शेषे**=अज्ञान-निद्रा में सो रहा है तो मैं वाणी द्वारा तेरे लिए उन्मोचन और प्रमोचन दोनों को ही करता हूँ।

भावार्थ—आचार्यों से ज्ञान प्राप्त करके हम अपने और पराये मनुष्यों के षड्यन्त्रों का शिकार न बनें। किसी भी स्त्री व पुरुष के लिए अपशब्द न कहें। अज्ञाननिद्रा में ही न सोये रह जाएँ।

ऋषिः —**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः** ॥ छन्दः —**अनुष्टुप्**॥

जरदष्टिं कृणोमि त्वा

यत्ते॑ मा॒ता यत्ते॑ पि॒ता जा॒मिर्भ्राता॑ च॒ सर्ज॑तः।
प्र॒त्यक्सेव॑स्व भेष॒जं ज॒रद॑ष्टिं कृणोमि त्वा॥ ५॥

१. **यत्**-जिस औषध को **ते माता**-तेरी माता, **यत् ते पिता**=जिस औषध को तेरे पिता, **जामिः** बहिन, **च भ्राता**-और भाई **सर्जतः**-उत्पन्न करते हैं, **भेषजम्** उस औषध का तू **प्रत्यक्**-अपने अन्दर **सेवस्व**-सेवन कर। इस औषध में किसी प्रकार का संशय नहीं रहता। इसप्रकार इस औषध के सेवन से **त्वा** तुझे **जरदष्टिम्** जरा अवस्था को व्याप्त करनेवाला **कृणोमि**=करता हूँ, तुझे दीर्घजीवी बनाता हूँ।

भावार्थ—औषध का सेवन विश्वस्त पुरुष के हाथों से ही करना चाहिए। इसप्रकार मैं (वैद्य) तुझे नीरोग बनाकर दीर्घजीवी बनाता हूँ।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः** ॥ छन्दः —**अनुष्टुप्**॥

रोगों व चिन्ताओं से ऊपर

इ॒हैधि॑ पुरुष॒ सर्वे॑ण॒ मन॑सा स॒ह। दू॒तौ य॒मस्य॒ मानु॑ गा॒ अधि॑ जीवपु॒रा इ॑हि॥ ६॥

१. हे **पुरुष**-इस शरीर-पुरी में निवास करनेवाले जीव! **सर्वेण मनसा सह**-पूर्ण मन के साथ तू **इह एधि** यहाँ—जीवन यात्रा में चलनेवाला हो। तू सदा उत्साह सम्पन्न होकर जीवन में आगे बढ़। **यमस्य दूतौ मा अनुगाः**-यम के दूतों के पीछे जानेवाला न हो। 'शरीर के रोग तथा मानस चिन्ताएँ' ही यम के दूत हैं। तू इन रोगों व चिन्ताओं से ऊपर उठ। २. **जीवपुराः अधि इहि**-(अधि+इ स्मरणे) जीवित पुरुषों की अग्रगतियों का तू स्मरण कर। सदा आगे बढ़नेवाला बन।

भावार्थ—जीवन-यात्रा में हम सदा उत्साह बनाये रक्खें। जो कार्य करें पूरे दिल से करें। रोग व चिन्ताएँ तो यम के दूत हैं। इन्हें परे छोड़कर हम अग्रगतियों का स्मरण करें और आगे बढ़ें।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आरोहणम् आक्रमणम्

अनु॑हूतः पुन॒रेहि॑ वि॒द्वानु॒दय॑नं प॒थः। आ॒रोह॑णमा॒क्रम॑णं जीव॑तोजीव॒तोऽ य॑नम्॥ ७॥

१. **अनुहूतः** माता पिता व आचार्यों से अनुहूत हुआ हुआ—'तुझे इधर आना है', इसप्रकार निर्देश किया हुआ तू **पुनः एहि**=फिर गतिवाला हो। **उदयनं विद्वान्**-उत्कृष्ट गति को जानता हुआ तू **पथः**-(एहि) मार्ग से गतिवाला हो—सदा उत्तम मार्ग से चलनेवाला हो। तू इस बात का ध्यान रख कि **आरोहण**-ऊपर चढ़ना व **आक्रमणम्**-विघ्नों को आक्रान्त करके आगे बढ़ना ही **जीवतः जीवतः**-प्रत्येक प्राणधारी का **अयनम्**-मार्ग है। तुझे भी आरोहण व आक्रमण को अपनाना है।

भावार्थ—हम अपने बड़ों से निर्दिष्ट मार्ग पर आगे बढ़ें। 'ऊपर उठना और आगे बढ़ना' ही जीवन का मार्ग है—इस बात को समझें।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मत डर, तू जाता नहीं

मा बि॑भेर्न म॑रिष्यसि ज॒रद॑ष्टिं कृणोमि त्वा।
निर॑वोचम॒हं यक्ष्म॒मङ्गे॑भ्यो अङ्गज्व॒रं तव॑॥ ८॥

१. वैद्य रोगी से कहता है कि **मा बिभेः**-डर मत, **न मरिष्यसि**=तू मरेगा नहीं। मैं **त्वा**-तुझे **जरदिष्टिं कृणोमि**=पूर्ण जरावस्था तक जीवन को व्याप्त करनेवाला बनाता हूँ। २. **अहम्**=मैं **तव**=तेरे **अङ्गेभ्यः**=अङ्गों से **अङ्गज्वरम्**-अङ्गज्वर को तथा **यक्ष्मम्**=यक्ष्मारोग को **निरवोचम्**-बाहर निकाल देता हूँ।

भावार्थ—वैद्य रोगी को उत्साहित करता हुआ कहता है कि मैं तुझे अभी नीरोग किये देता हूँ। तू मरेगा नहीं। डर मत, तू पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करेगा।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

अङ्गभेदः, अङ्गज्वरः

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येनइव प्रापप्तद्वाचा साढः परस्तराम्॥ ९॥

१. **अङ्गभेदः**-अवयवों का टूटना—अवयवों की पीड़ा, **अङ्गज्वरः**=अङ्गों का ज्वर **यः च ते हृदयामयः**=और जो तेरे हृदय का रोग है, वह **यक्ष्मः**=रोग **वाचा साढः**-मेरी वाणी से पराजित हुआ-हुआ **परस्तराम्**-बहुत दूर **प्रापप्तत्**=भाग जाए। इसप्रकार वेग से भाग जाए **इव**=जैसेकि **श्येनः**=बाज़पक्षी वेग से उड़ जाता है।

भावार्थ—वैद्य रोगी से कहता है कि तेरा सब विकार अभी इसप्रकार दूर चला जाता है, जैसेकि बाज़पक्षी शीघ्रता से उड़ जाता है।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

बोधप्रतीबोधौ

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्॥ १०॥

१. **बोधप्रतीबोधौ**=बोध और प्रतिबोध—बुद्धि व मन—विवेक व चैतन्य—ये दो **ऋषी**-ऋषि हैं—तेरे जीवन को ध्यान से देखनेवाले हैं। इनमें एक **अस्वप्नः**-न सोनेवाला है **च**=और **यः**-जो दूसरा है वह **जागृविः**-सदा जागता है। विवेक हमें कर्त्तव्य के विषयों में सावधान रखता है और चैतन्य सदा जागरित रखता है। २. **तौ**=वे दोनों ते **प्राणस्य**=तेरे प्राण के **गोप्तारौ**-रक्षक हैं, ये **दिवा नक्तं च**-दिन और रात **जागृताम्**=जागते रहें।

भावार्थ—हमारा विवेक व चैतन्य लुप्त न हो। इनका जागरित रहना ही जीवन का रक्षक बनना है।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्निः उपसद्यः

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते। उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्कृष्णाच्चित्तमसस्परि॥ ११॥

१. **अयम् अग्निः**=यह अग्रणी प्रभु **उपसद्यः**=उपासना के योग्य है। **इह**=यहाँ—उपासना में ही **सूर्यः ते उदेतु**-सूर्य तेरे लिए उदित हो, अर्थात् सूर्योदय से पूर्व ही उठकर तू उपासना में प्रवृत्त होनेवाला बन। २. तू **गम्भीरात् मृत्योः उत् ऐहि**=भयावह मृत्यु से ऊपर उठ तथा **कृष्णात् तमसः चित् परि**=(उदेहि) काले अन्धकार से भी तू ऊपर उठनेवाला बन—अविद्यान्धकार को छोड़कर ऊपर उठ।

भावार्थ—हम सूर्योदय से पूर्व ही उपासना में प्रवृत्त हों। भयावह मृत्यु से तथा अविद्या-अन्धकार से हम ऊपर उठें।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**चतुष्पदाविराड्जगती**॥

उत्पारण

नमो॑ य॒माय॒ नमो॑ अस्तु मृ॒त्यवे॒ नम॑: पि॒तृभ्य॑ उ॒त ये नय॑न्ति।
उ॒त्पार॑णस्य॒ यो वेद॒ तम॒ग्निं पु॒रो द॑धे॒ऽस्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये॥ १२॥

१. **यमाय**-उस सर्वनियन्ता प्रभु के लिए **नमः**=नमस्कार हो। **मृत्यवे** पुराने शरीर को छुड़ाकर नया शरीर देनेवाले प्रभु के लिए **नमः अस्तु** नमस्कार हो। **उत पितृभ्यः**-और उन पितरों के लिए **नमः**-नमस्कार हो **ये**-जो **नयन्ति**-हमें उन्नति-पथ पर ले-चलते हैं। २. **अस्मै अरिष्टतातये** इस कल्याण वृद्धि के लिए **तम् अग्निम्** उस अग्रणी प्रभु को **पुरः दधे**=सदा अपने सामने रखता हूँ, **यः** जो प्रभु **उत्पारणस्य वेद**=भव सागर से पार लगाना जानते हैं।

भावार्थ—प्रभु 'यम' हैं, 'मृत्यु' हैं, 'अग्नि' हैं। ये प्रभु हमें भव-सागर से पार ले जाते हैं और हमारा कल्याण करते हैं, अतः हम उन्हें नमस्कार करते हैं। हम उन पितरों को भी नमस्कार करते हैं, जो हमें उन्नति पथ पर ले चलते हैं।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्राण, मन, चक्षु, बल-वृद्धि

ऐतु॑ प्रा॒ण ऐतु॒ मन॒ ऐतु॒ चक्षु॒रथो॒ बल॑म्।
शरी॑रमस्य॒ सं वि॒दां तत्प॒द्भ्यां प्रति॑ तिष्ठतु॥ १३॥

१. इस शरीर में **प्राणः आ एतु** प्रथम प्राण आये, फिर **मनः आ एतु** मन का आगमन हो, **चक्षुः आ एतु**-तब आँख आदि इन्द्रियाँ प्राप्त हों, **अथो बलम्**-तत्पश्चात् शरीर में बल का सञ्चार हो। २. तब **अस्य** इसका **शरीरम्**=शरीर **विदाम्**-बुद्धि को **सम्** (एतु) सम्यक् प्राप्त हो। **तत्** तब **पद्भ्याम् प्रतितिष्ठतु**-पाँवों से प्रतिष्ठित हो—पाँवों पर खड़ा होकर कार्य करनेवाला हो।

भावार्थ—शरीर में क्रमशः 'प्राण, मन, चक्षु, बल व बुद्धि' का प्रवेश होता है और तब वह पाँवों पर प्रतिष्ठित होकर कार्यों को करने लगता है।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

मा नु भूमिगृहः भुवत्

प्रा॒णेना॑ग्ने॒ चक्षु॑षा॒ सं सृ॑जे॒मं समी॑रय॒ तन्वा॒ ३ सं बले॑न।
वेत्था॒मृत॑स्य॒ मा नु गा॒न्मा नु भूमि॑गृहो भुवत्॥ १४॥

१. हे **अग्ने** परमात्मन्! **इमम्** इस व्यक्ति को **प्राणेन चक्षुषा संसृज**-प्राण व दर्शनशक्ति से संसृष्ट कीजिए। इसे **तन्वा**-शरीर की शक्तियों के विस्तार से तथा **बलेन**-बल से **सं सं ईरय** सम्यक् प्रेरित कीजिए। शरीरशक्ति-विस्तार तथा बल से युक्त हुआ हुआ यह अपने कार्यों को सम्यक् करनेवाला हो। २. हे प्रभो! आप **अमृतस्य वेत्थ**=अमृत को जानते हैं—नीरोगता प्राप्त कराते हैं। **मा नु गात्**-यह व्यक्ति शरीर को छोड़कर चला न जाए **मा नु भूमिगृहः भुवत्**-मत ही भूमिरूप गृहवाला हो जाए—मिट्टी में न मिल जाए।

भावार्थ—प्राणशक्ति, दर्शनशक्ति, शक्तियुक्त शरीर व बल से युक्त यह व्यक्ति नीरोग हो, यह मिट्टी में न मिल जाए।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सूर्य-किरणों का सम्पर्क

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥ १५॥

१. **ते प्राणः**=तेरा प्राण **मा उपदसत्**=क्षीण न हो। **मा उ**=और न ही **ते अपानः**=तेरा अपान **अपिधायि**=अपिहित हो जाए—कार्य करने में असमर्थ हो जाए। २. यह **अधिपतिः**=सब देवों का मुखिया **सूर्यः**=सूर्य **रश्मिभिः**=अपनी किरणों के द्वारा **त्वा**=तुझे **मृत्योः**=मृत्यु से **उदायच्छतु**=ऊपर उठाये।

भावार्थ—हमारी प्राण व अपनाशक्ति ठीक बनी रहे। इनका कार्य समुचित रूप से होता रहे। सूर्य-किरणों का सम्पर्क हमें मृत्यु से ऊपर उठाये।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यक्ष्मं शतं रोपीश्च तक्मनः

इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः॥ १६॥

१. **इयम्**=यह **जिह्वा**=जीभ **अन्तः बद्धा**=मुख में बद्ध हुई-हुई **पनिः पदा**=स्तुति करने में चतुर व व्यवहार में गतिवाली होकर **वदति**=व्यक्त वाणी का उच्चारण करती है। इस वाणी द्वारा ही स्तुति होती है और सब व्यापार चलते हैं। २. हे वाणि! **त्वया**=तेरे द्वार—तेरे बल से **यक्ष्मम्**=रोग को **च**=और **तक्मनः**=कष्टदायी ज्वर की **शतं रोपीः**=सैकड़ों पीड़ाओं को भी **निरवोचम्**=दूर कर देता हूँ—बाहर निकाल फेंकता हूँ।

भावार्थ—वाणी ही स्तवन आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करती है। इसके द्वारा हम रोगों व रोगजनित पीड़ाओं को दूर करते हैं।

ऋषिः—**उन्मोचनः (आयुष्यकामः)**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः, आयुः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

अपराजित प्रियतम लोक

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः॥ १७॥

१. **अयं लोकः**=यह शरीर **प्रियतमः**=अत्यन्त प्रिय है। यह **देवानाम्**=प्रकाशक इन्द्रियों का **अपराजितः**=अपराजित लोक है। २. हे **पुरुष**=पुरुष! **यस्मै**=जिस कारण से **त्वम्**=तू **इह**=यहाँ—इस संसार में **मृत्यवे दिष्टः**=मृत्यु के भाग्य में पड़ा हुआ ही **जज्ञिषे**=उत्पन्न होता है **सः च**=वह जो तू है, उस **त्वा**=तुझे **अनु ह्वयामसि**=फिर से चेताते हैं—पुकारते हैं कि **जरसः पुरः**=जरावस्था से पूर्व **मा मृथाः**=प्राणों को मत छोड़।

भावार्थ—यह शरीर इन्द्रियों का प्रियतम अपराजित लोक है। इसमें जीव मृत्यु के लिए दिष्ट हुआ-हुआ ही जन्म लेता है। उसे हम चेताते हैं कि 'पूर्ण वृद्धावस्था से पहले मरे नहीं'।

विशेष—प्राणापान की शक्ति से सम्पन्न यह पुरुष 'शुक्रः' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आमे पात्रे, मिश्रधान्ये, आमे मांसे

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ १॥

१. **यां कृत्याम्**=जिस हिंसा के कार्य को **ते**=वे हमारे शत्रु **आमे पात्रे**=कच्चे पात्र में (विलेप लगाकार अपने शत्रुओं के घर दूध आदि बेच आने के द्वारा) **चक्रुः**=करते हैं। **याम्**=जिस हिंसा-कार्य को **मिश्रधान्ये**=मिले-जुले अन्नों में विषैली बूटी के दाने मिलाकर **चक्रुः**=करते हैं। २. **आमे मांसे**=कच्चे फल के गूदे में (विषधारा छोड़ देने के द्वारा) **यां कृत्याम्**=जिस हिंसन-कार्य को **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस कृत्या को **पुनः**=फिर **प्रतिहरामि**=उन्हीं के प्रति प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—घातक प्रयोग करनेवालों को उन्हीं घातक प्रयोगों द्वारा समाप्त कर दिया जाए। वे घातक प्रयोग ही उनके लिए दण्ड हों।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

न मारने योग्य प्राणी

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ २॥
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ३॥

१. **याम्**=जिस **कृत्याम्**=घातक प्रयोग को **ते**=वे **कृकवाकौ**=मोर आदि सुन्दर पक्षियों पर **अजे**=बकरे व बकरियों के समूह पर **वा कुरीरिणि**=वा अन्य सींगवाले पशुओं पर **चक्रुः**=करते हैं, **यां कृत्याम्**=जिस घातक प्रयोग को **ते**=वे **अव्याम्**=हमारी भेड़ों पर **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस घातक प्रयोग को **पुनः प्रतिहरामि**=फिर उन्हें ही वापस प्राप्त कराता हूँ, उस घातक प्रयोग से उन्हें ही दण्डित करता हूँ। २. **याम्**=जिस हिंसा-कार्य को **ते**=वे **एकशफे**=एक खुरवाले पशु पर **वा पशूनाम् उभयादति**=अथवा दोनों जबड़ों में दाँतवाले पशुओं पर **चक्रुः**=करते हैं। **यां कृत्याम्**=जिस हिंसा-कार्य को **गर्दभे**=गधे पर **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस हिंसा को मैं पुनः **प्रतिहरामि**=फिर वापस उन्हें ही प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—राष्ट्र में 'मोर, अज, कुरीरी (सींगवाले) पशु, भेड़, घोड़े, गाय व गर्दभ आदि का मारना दण्ड योग्य कार्य समझा जाए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अमूला, नराची, क्षेत्र

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ४॥

१. **याम्**=जिस कृत्या को **ते**=वे **अमूलायाम्**=अग्नि-शिखा नामक ओषधि में **चक्रुः**=करते हैं **वा**=या **वलगम्**=(वल संवरणे) संवृतरूप में—छिपे रूप में **नराच्याम्**=नराची नामक ओषधि में करते हैं, **यां कृत्याम्**=जिस हिंसन-कार्य को **ते**=वे **क्षेत्रे चक्रुः**=खेत के विषय में करते हैं, अर्थात् खेत को नष्ट करने के लिए यत्नशील होते हैं, **ताम्**=उस हिंसन-कार्य को पुनः

प्रतिहरामि=फिर वापस उन्हें ही प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—राष्ट्र में ओषधि-विशेषों व अन्नोत्पत्ति स्थानभूत क्षेत्रों की रक्षा की व्यवस्था नितान्त आवश्यक है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

गार्हपत्ये, पूर्वाग्नौ, शालायाम्

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ५॥

१. **ते**=वे **दुश्चितः**=दुष्ट चित्तवाले लोग **याम्**=जिस हिंसन-कार्य को **गार्हपत्ये**=गार्हपत्य अग्नि में—रसोई की अग्नि में **उत**=और **पूर्वाग्नौ**=हमारे शरीरों का पालन और पूरण करनेवाली—पूर्व दिशा में स्थापित—आह्वनीय अग्नि में **चक्रुः**=करते हैं। २. **यां कृत्याम्**=जिस हिंसन-कार्य को **शालायाम्**=गृह के विषय में (आग लगा देने आदि के द्वारा) **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस कृत्या को **पुनः**=फिर **प्रतिहरामि**=उन दुश्चित्तों को ही प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—राजा ऐसी व्यवस्था करे कि घरों का तथा उनमें गार्हपत्य व आह्वनीय अग्नियों का रक्षण हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सभा, अधिदेवन्, अक्ष, सेना, इष्वायुध, दुन्दुभि

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ६॥
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ७॥

१. **याम्**=जिस हिंसा के कार्य को **ते**=वे शत्रु **सभायां चक्रुः**=सभा में करते हैं, संसद् के विषय में जिस घातपात की क्रिया को करते हैं (संसद् भवन को ही बारूद आदि से उड़ाने की सोचते हैं), **याम्**=जिस कृत्या को **अधिदेवने**=तेरी क्रीड़ा के स्थल उपवन आदि में **चक्रुः**=करते हैं, **यां कृत्याम्**=जिस छेदन-भेदन के कार्य को **अक्षेषु**=व्यवहारों में करते हैं, **ताम्**=उस सब हिंसन-क्रिया को **पुनः**=फिर **प्रतिहरामि**=वापस उन्हीं को प्राप्त कराता हूँ। २. **याम्**=जिस हिंसन-क्रिया को **ते**=वे शत्रु **सेनायां चक्रुः**=सेना के विषय में करते हैं—सेना में असन्तोष आदि फैलाने का प्रयत्न करते हैं, **याम्**=जिस कृत्या को **इषु आयुधे**=बाण आदि अस्त्रों के विषय में **चक्रुः**=करते हैं, **याम्**=जिस कृत्या को **दुन्दुभौ**=युद्धवाद्यों के विषय में **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस सब कृत्या को **पुनः**=फिर **प्रतिहरामि**=वापस उन शत्रुओं को ही प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—'सभा को, क्रीड़ास्थल को तथा सब व्यवहारों को' शत्रुओं के हिंसा-प्रयोगों से बचाया जाए। इसीप्रकार सेना को, शस्त्रास्त्रों को, युद्धवाद्यों को शत्रुकृत कृत्याओं से सुरक्षित करना चाहिए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कूपे, श्मशाने, सद्मनि

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ८॥

१. **याम्**=जिस **कृत्याम्**=हिंसन-कार्य को **कूपे**=कूप में (विष डालने आदि के द्वारा) **अवदधुः**=स्थापित करते हैं **वा**=या निज विस्फोटक पदार्थों को **श्मशाने**=श्मशान में भय आदि उत्पन्न करने के लिए **निचख्नुः**=गाड़ आते हैं। २. **यां कृत्याम्**=जिस हिंसन-कार्य को **सद्मनि**=घर में आग लगाने व बालकों की हत्या आदि द्वारा **चक्रुः**=करते हैं, **ताम्**=उस कृत्या को **पनुः**=फिर **प्रतिहरामि**=उन शत्रुओं को ही वापस प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—कुओं, श्मशानों व घरों के रक्षण का सुप्रबन्ध आवश्यक है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

म्रोकं, निर्दाहं, क्रव्यादम्

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम्॥ ९॥

१. **याम्**=जिस हिंसन-क्रिया को **पुरुषास्थे**=पुरुष की हड्डी में **ते**=वे शत्रु **चक्रुः**=करते हैं, **च**=और **याम्**=जिस कृत्या को **संकसुके**=(सं कस् गतौ) सम्यक् गतिवाली जाज्वल्यमान अग्नि में करते हैं, **ताम्**=उस कृत्या को **म्रोकम्**=चोर के प्रति, **निर्दाहम्**=आग लगानेवाले के प्रति तथा **क्रव्यादम्**=मांसभक्षक के प्रति **पुनः**=फिर **प्रतिहरामि**=वापस प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—पुरुष-अस्थियों को तोड़नेवाले व आग लगानेवाले दण्डित हों। चोरों व मांसभक्षियों को भी दण्डित किया जाए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अधीरः धीरेभ्यः

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या॥ १०॥

१. **अपथेन**=बुरे मार्ग से **एनाम्**=इस हिंसक को एक **अधीरः**=नासमझ पुरुष **आजभार**=यहाँ—राष्ट्र में ले-आया **ताम्**=उस हिंसा को **पथा**=मार्ग पर चलने के द्वारा **इतः**=यहाँ से—राष्ट्र से **प्र हिण्मसि**=दूर भगाते हैं। अनीति के कारण उपस्थित हिंसा को नीति के द्वारा दूर करते हैं। २. **अधीरः**=मूर्ख मनुष्य **अचित्त्या**=नासमझी से **मर्याधीरेभ्यः**=मर्यादा धारण करनेवाले पुरुषों के लिए **सं जभार**=उस हिंसा को ला-पटकता है।

भावार्थ—अधीर पुरुषों से नासमझी के कारण राष्ट्र में अनीति से हिंसा की स्थिति प्राप्त कराई जाती है, उसे नीति के द्वारा दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्** ॥

हिंसा का सहन

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः॥ ११॥

१. **यः**=जो **चकार**=हिंसा करता है वह **कर्तुं न शशाक**=हिंसा कर नहीं सका, अपने ही **पादम् अंगुरिम्**=पाँव व अंगुली को **शश्रे**=उसने शीर्ण कर लिया। २. वह **अभगः**=अभागा **भगवद्भ्यः अस्मभ्यम्**=सौभाग्यशाली हम लोगों के लिए तो **भद्रं चकार**=कल्याण करनेवाला ही हुआ। वस्तुतः उसने हमें हिंसा में न घबराने व प्रसन्न रह सकने के अभ्यास का अवसर ही दिया।

भावार्थ—न 'पापे प्रति पापः स्यात्' के अनुसार हम हिंसक की हिंसा करनेवाले न हों।

हिंसकों को राजदण्ड ही हिंसा से रोकनेवाला हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**कृत्याप्रतिहरणम्** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

कृत्याकृतं, बलगिनं, मूलिनं, शपथेय्यम्

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया॥ १२॥

१. **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावक राजा **कृत्याकृतम्**=हिंसा करनेवाले **वलगिनम्**=नीच पुरुष को, छुपकर कुटिल कर्म करनेवाले को, **मूलिनम्**=जड़ उखाड़नेवाले को **शपथेय्यम्**=व्यर्थ निन्दक पुरुष को **महता वधेन**=महान् कठोर दण्ड से **हन्तु**=नष्ट कर दे। २. **अग्निः**=राष्ट्र को उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाला राजा **अस्तया**=फेंके जानेवाले अस्त्रों से (बाण या गोली से) **तम्**=उसे **विध्यतु**=विद्ध कर दे।

भावार्थ—राजा प्रजापीड़कों को उचित दण्ड दे और इसप्रकार उपद्रवों को शान्त करे।

॥ इति पञ्चमं काण्डम् ॥